मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

मित्र-स्मरण

विशेषत जिनके प्रेमपूर्ण आग्रहके कारण मै अपने विचार
पुस्तक-रूपमे जनताके समक्ष प्रस्तुत करने लगा
अुन स्वर्गीय श्री किशोरलाल मशरूवालाका
पवित्र स्मरण ।

केदारनाथ

सम्पादकका निवेदन

परम पूज्य श्री किशोरलालभाओीकी यह पुस्तक पाठकोंके सामने रखते हुअे मुझे बड़ा हर्ष होता है। अिसमें अुनका, [illegible] संग्रह किया गया है। 'विवेक और साधना'* नामक अुनकी पुस्तक प्रकाशित हुअी, अुसके बाद हिन्दी, गुजराती और मराठी-भाषामें [illegible] जो धर्म-विषयक चिन्तन प्रकाशित होता रहा है। वह पुस्तकाकार प्रकाशित हो न जाय, [illegible] अुन्हें स्थान नहीं दिया जा सका था। अब वे लेख [illegible] पुस्तकमें यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। अिसमें लिये गये लेख 'अखंड आनन्द' मासिकमें छप चुके हैं। अिन लेखोंके बाद कुछ लेख [illegible] 'शिक्षा और साहित्य' नामक पुस्तिकामें छप चुके हैं। अिस पुस्तकमें श्रेयार्थी विचारकोंके लिये हुअे कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रोंका भी समावेश किया गया है। पुस्तक-रूपमें प्रकाशित करते समय लेखोंमें जहाँ स्पष्टता करना आवश्यक मालूम हुआ वहाँ स्पष्टता कर दी गयी है। मराठी [illegible] किया गया है। गुजरातीसे हिन्दी अनुवाद नवजीवन कार्यालयके हिन्दी-विभागके श्री सोमेश्वर पुरोहितने किया है।

'विवेक और साधना'की भूमिकामें पूज्य नाथजी तथा अुनके विचारोंके विषयमें आवश्यक बातोंका अुल्लेख कर दिया गया है। अुन्होंने स्वयं अपना आत्म-परिचय दिया है। अतः यहाँ विशेष कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

यह पुस्तक तैयार करनेमें जैसे मुझे कृतार्थताका अनुभव हुआ है, अुसी प्रकार आशा है कि अिसका पठन और मनन पाठकोंको भी विचार-जागृतिमें सहायक होगा और वे धन्यताका अनुभव करेंगे।

१०–३–'५७ रमणीकलाल मोदी

अहमदाबाद

---

* अिसका हिन्दी संस्करण नवजीवनसे प्रकाशित हुआ है। कीमत ४–०–०, डाकखर्च १–४–०।

प्रस्तावना

मैं लेखक नही हू, फिर भी कुछ मासिकोके सम्पादकोंने मुझे लेखक बना दिया है। अुनके आग्रहसे समय-समय पर मैंने अपने विचार जनताके सामने लेखरूपमे रखे है। अुनमे से कुछ लेख भलीभाति सुधारकर और कही-कही विचारोकी स्पष्टता करके अिस पुस्तकमे अेकत्र किये गये है। ये लेख प्रसगानुसार भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न विषयो पर लिखे गये थे। अत. अिनमे विचारोका कोअी अनुक्रम जमानेका प्रयत्न नही किया गया है। अिनमे से प्रत्येक लेख स्वतत्र रूपमे अलग है। परन्तु सबके पीछे विचारोंका दृढ आधार है। मेरे लेख पुस्तक-रूपमे प्रकट होने चाहिये, अैसी आग्रहभरी माग होनेसे मैंने यह काम हाथमे लिया है। अिसका कारण है गुजराती पाठकोका मेरे प्रति प्रेम और सद्‌भाव। मेरा विश्वास है कि 'विवेक और साधना' की तरह यह लेख-सग्रह भी लोकप्रिय होगा। अभी तुरन्त तो अिन लेखोका प्रथम भाग ही प्रकाशित किया जाता है। लोगोकी अभिरुचि देखकर दूसरा भाग छापनेका विचार है।

गुजराती अनुवाद मूल मराठी परसे मेरे मित्र श्री रमणीकलाल मोदीने किया है। किसी भी लेखके अर्थ, आशय, भाव या स्वारस्यमे थोडी भी कमी न आने देकर अुन्होने अनुवादमे जो दक्षता और सूक्ष्मता दिखाअी है, वह प्रशसनीय है।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिरने मेरे प्रति रहे अपने प्रेमके कारण अिसके प्रकाशनका कार्य स्वय स्वीकार करके थोड़े ही समयमे अुसे पूरा कर दिया अिसके लिअे मैं अुसका आभारी हू।

शातिकुज, नायगाव क्रॉसरोड,
दादर, बम्बअी – १४
२०–४–'५५

केदारनाथ

अनुक्रमणिका

विचार-दर्शन

१

कर्ममार्गका सात्त्विक आनन्द

काल्पनिक आनन्दके भाविक प्रकार

अिन्द्रियजन्य विषय-सुखकी अतिशयताके विपरीत परिणाम, गलत समाज-रचना और अुसका ऊचनीच भाव, धर्मका भ्रामक और कामनिक क्रियाकाड, अुद्योग, सद्गुण और कर्तृत्वका अभाव आदि अनेक कारणोंसे अुत्पन्न हुअे दुःखोंसे अपनेको और दूसरोंको मुक्त करके मानवोचित सुख प्राप्त करने और दूसरोंको पहुचानेका अिहलोकका मार्ग जब हमें नही सूझा और नही मिला, तब परलोकके सुखकी आशा पर दुःख सहन करते रहनेकी कल्पना पैदा हुअी। बादमें अिस सुखकी आशा झूठी मालूम होनेके कारण अथवा विचार करने पर यह पता चलनेके कारण कि परलोकका सुख भी अिन्द्रियजन्य है अर्थात् नाशवान और अशाश्वत है, अिस सुखको गौण माना गया और अुसके पश्चात् यह कल्पना निकली कि सुखमात्र — आनदमात्र सदोष और त्याज्य है। किसी भी सुखका अन्त आखिर तो दुःखमें ही होता है। तब अुसमें से यह विचार पैदा हुआ कि दुःख न भोगना हो तो सुखका भी त्याग करना चाहिये। हमने दृष्टान्तोंके द्वारा अपने मनको समझा लिया कि सुख और दुःख अेक ही सिक्केके दो पहलू है, और दुःखसे छूटनेके लिअे सुखके भी सम्पूर्ण त्यागका वैराग्य-प्रधान मार्ग खोज निकाला।

परन्तु अितनेसे अर्थात् केवल सुखके त्यागसे हमें सन्तोष नही हुआ। हम मानव-जीवनकी अुचित आवश्यकताओं और अिच्छाओंका विशेष आग्रहके साथ त्याग करने और अेक प्रकारका कृत्रिम जीवन बितानेके पीछे पडे। भूख, प्यास और नींदकी सुविधाके लिअे खान, पान और स्थानकी व्यवस्था करनी पडती है। अिन आवश्यकताओंके कारण हम बधनमें पडे हुअे हैं। 'आत्मा' शरीरसे भिन्न है। हम आत्मा हैं। शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यकताओंसे मुक्त होने पर हमें मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी। अिस श्रद्धा और विचारसरणीकी वजहसे तपको महत्त्व मिला। मोक्षके परम सुखकी आशामें शरीरके बन्धनसे आत्माको सदाके लिअे छुडानेके खातिर कुछ दिन तक

भूख, प्यास और नीदका त्याग करके तीव्र कष्ट सहनेवाले कुछ लोग समाजमे निकले। संसारकी सुविधाओंके त्याग — जानबूझ कर कुछ कष्टों और यातनाओंके स्वीकार — तप, संयम और कष्ट-सहनके पीछे मोक्षकी कल्पना और अुत्कट आशा काम कर रही थी। अिस प्रकारके तपस्वियोंको तप करते समय और तपके बाद कौनसा सुख प्राप्त हुआ होगा, अिसकी कल्पना हम नही कर सकते। फिर भी निश्चित रूपमे अुनकी यह श्रद्धा थी कि शरीर-रहित केवल 'आत्मा' शरीर छोडनेके बाद कोअी विशिष्ट प्रकारका सर्वोच्च सुख अनुभव कर सकती है। अितनी श्रद्धासे जिन्हें संतोष नही हुआ, अुन्होंने शरीर-कष्टको थोडा कम करके, तपको कुछ सौम्य बनाकर, 'आत्मा' सच्चिदानन्द-स्वरूप है अैसी कल्पना करके अुन कल्पनाके आनन्दमे लीन होने और रहनेका अुपाय खोज निकाला। कुछ लोगोंने अुसीमे भिन्न भिन्न आनन्दोंकी कल्पना करके आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द, अभेदानन्द आदि आनन्द निर्माण किये। मनुष्य आनन्द या आनन्दकी कल्पनाको छोडकर केवल आत्मा-विषयक नीरस कल्पनामे मग्न नही रह सकता। अतः केवल आत्मा-विषयक विचार पर पहुंचे हुअे लोगोंको भी भिन्न भिन्न आनन्दोंकी कल्पना करनी पडी। अिन लोगोंने भी शरीर-सुखको त्याज्य ही माना। अितने आनन्दसे जिन्हें तृप्ति नही हुअी, अुन्होंने वैराग्य धारण करनेके बाद परमेश्वरको साकार और परम सुन्दर बनाकर अुसके दिव्य आकारके और दिव्य गुणोंके मन कल्पित अद्‌भुत वर्णन करके ताल और स्वरसे वाद्योंके साथ वैयक्तिक या सामुदायिक रूपमे कीर्तन करनेकी पद्धति निकाली तथा अुसमे मनको रमाने, आनन्द प्राप्त करनेका मार्ग खोजा। अुन्होंने परमेश्वरके दिव्य धामोंकी कल्पना की। वहांके दिव्य सुखोंके, रात-दिनके वहांके परम आनन्ददायक कार्यक्रमोंके, अेकसे अेक बढकर सुन्दर वर्णन तैयार किये। कालान्तरमे मनुष्यके हृदयमे अैसी श्रद्धा अुत्पन्न हुअी कि भक्त मरनेके पश्चात् अुन दिव्य धामोंमे परमेश्वरके पास वास करता है। मनकी अैसी स्थितिमे परमेश्वरकी मूर्ति बनाकर अुसके मंदिर खडे किये गये। अिसके बाद मूर्तिका पूजन-अर्चन, षोडशोपचारका ठाट, नैवेद्य, तीर्थ-प्रसाद, गायन, वादन, नर्तन, भजन, दीपोत्सव, महोत्सव, अन्नकूट आदि अुपासनाके प्रकार निर्माण होने पर मनुष्य अुनसे सुख और आनन्द प्राप्त करने लगा। यह मनुष्यका अिहलोकमे ही दिव्य धामोंकी नकल करके, यहीं अुनके

प्रतिधाम खडे करके, भक्तिके नाम पर स्वयं ही रची हुअी सृष्टिमें सुख और आनन्द प्राप्त करनेका प्रयत्न था, और वह आज भी चल रहा है। अपने सुख और आनन्दके लिअे परमेश्वरको अपने अनुकूल बनाकर मनुष्यने अुसके निमित्तसे विभिन्न खानपानके समारंभ और कार्यक्रम निर्माण किये। भाविक सम्प्रदायोंमें भक्तिके नाम पर सुखोपभोगके और मान-सम्मानके अुचित मालूम होनेवाले दर्जे निश्चित किये गये। अधिकारी और कार्यकर्ता नियुक्त किये गये। अिस प्रकारकी अनेक साम्प्रदायिक सृष्टियोंकी हमारे समाजमें रचना होती आअी है, और आज भी होती रहती है। परन्तु पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अितने सुखोपभोगसे भी हमारा वैराग्य थोडा कम हुआ है और हम आनन्दके भोक्ता बने हैं, अैसा अिनमें से अेकको भी नहीं लगता।

मानवकी अमर सुखेच्छा

मनुष्यका मन सुखको सर्वथा छोड नहीं सकता। अेक सुख या आनन्दको छोडनेसे पहले दूसरे किसी सुख या आनन्दका विश्वास, आशा या कल्पना करना अुसे आवश्यक मालूम होता है। वैराग्य, मोक्ष, भक्ति आदि सारी बातोंसे सम्बन्धित मानव-जातिके अितिहासमें मनुष्यके मनका निरीक्षण और जांच करने पर यही बात ध्यानमें आती है। मोक्षके सुखकी आशासे मनुष्यने संसार-सुखका त्याग करके देखा, खान-पान और विश्रामका जानबूझ कर त्याग करके, हठपूर्वक बिना कारण शरीरको कष्ट देकर, देह-दमन करके और यातनायें सह कर देखा, अपने विषयमें आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म चाहे जैसी दिव्य, भव्य और व्यापक कल्पना करके भी मनुष्यने देख लिया। भक्तिके नाम पर अुसने अलग अलग संप्रदाय, अलग अलग सृष्टियां निर्माण करके, अलग अलग दिव्य सुखोंकी कल्पना करके भी देख लिया। परन्तु किसी भी अुपायसे अुसके मनुष्यपनका नाश नहीं हुआ। अुसे शरीरसे अलग होते नहीं आया। और सुखका, आनन्दका, वह सदाके लिअे त्याग नहीं कर सका। कैसे भी अुग्र तपसे अुसकी सुखेच्छा मरती नहीं। वह किसी न किसी जगह चिपटी रहती है, अितना ही नहीं परन्तु कभी-कभी तो वह विकृत रूप ले लेती है, और जीवन पर अुसकी हानिकारक प्रतिक्रिया होती है। यह सब निरीक्षणके अन्तमें समझमें आया है।

वैराग्यके आवेशमे बनाया हुआ कठोर कृत्रिम जीवन कभी सच्चा स्वाभाविक जीवन नही हो सकता। आग्रहसे — निग्रहसे थोडे समय तक किसी दिव्य आनन्दकी कल्पनामे अैसा जीवन व्यतीत किया हो, तो भी अुस आनन्दमे जीवनके कर्ममे मिलनेवाले प्रत्यक्ष आनन्द जैसी सत्यता नही होती। कल्पनाके सिवा प्रकृतिके अन्य किसी भी धर्मका अुसे आधार नही होता। अत कल्पनाका वेग जब कम पडने लगता है, तब वह आनन्द भी घटने लगता है। कल्पना अेकसी टिकी रहे यह कभी सभव नही है। अुसके सुखकी या आनन्दकी मधुरता भी समय बीतने पर कम होने लगती है और फिर अुस कल्पनामे कोअी आनन्द मालूम नही होता। कल्पनाकी गति, अुसकी दौड, मन्द पड जाती है और बादमे अुसका अन्त भी हो जाता है। अैसी स्थितिमे अुसी अेक भजन या धुनसे आनन्दका निर्माण होना बन्द हो जाता है। क्रिया होती है परन्तु आनन्दकी लहरे नही अुठती। अैसा कल्पित आनन्द किसीके लिअे कम समय तक तो किसीके लिअे अधिक समय तक टिकता है, परन्तु कभी न कभी अुसका अन्त अवश्य आ जाता है। थोडी तात्त्विक दृष्टि आ जाने पर, निरीक्षण-शक्ति बढ जाने पर अपनी ही निर्माण की हुअी सृष्टिकी काल्पनिकता — असत्यता अुसके ध्यानमे आ जाती है और कल्पनाका आनन्द नष्ट हो जाता है। अिस तरह किसी भी कारणसे आनन्दका नाश हो जाने पर अथवा अीश्वर-विषयक पहली व्याकुलता कम हो जाने पर अिस मार्गके साधकका मन कार्य-रहित और आनन्द-रहित होता जाता है। पहले अीश्वरकी ओर अुसके चित्तकी जो गति थी वह मन्द या बन्द हो जाती है और कल्पित आनन्दके रहते हुअे भी पहले जैसा आनन्द अनुभव नही होता। अत अैसी स्थितिमे साधकका मन फिरसे आनन्द खोजने लगता है। कर्ममार्ग छोडकर केवल निवृत्ति-परायण बने हुअे साधकके लिअे कर्ममार्गका व्यवसाय न होनेसे तथा अुपयुक्त कर्म या कर्तव्यसे सात्त्विक सुख और आनन्द प्राप्त करनेका कोअी प्रत्यक्ष साधन न रह जानेसे अुसकी अवनति होनेका भय रहता है। और कुछ निवृत्ति-परायण साधक अिसी स्थितिमे गलत मार्ग पकड़ लेते है। जब तक मनमे किसी भी अुच्च हेतुकी प्राप्तिकी आतुरता बनी रहती है, तब तक साधककी अवनति होनेकी कम सभावना रहती है। अिस आतुरताके कारण

साधक दशामे पतनका भय

तथा अुस आतुरतामें भी अेक प्रकारकी पवित्र मानसिक स्थितिके सतोपके कारण अुस समय अन्य सारे पूर्व-सस्कार सुप्त रूपमें दबे हुअे रहते हैं। परन्तु आतुरताके शान्त हो जानेके बाद, घट जानेके बाद पहलेके कृत्रिम कठोर नियमनकी प्रतिक्रिया पूर्व-सस्कारोकी जागृतिके रूपमे हो अिसकी बडी सभावना रहती है। अिसी समय मानसिक चचलता और अतृप्ति मालूम होने लगती है। कल्पित आनन्दसे तृप्ति होनेकी स्थिति साधककी नही रहती। निवृत्ति-परायणताकी यह स्थिति साधकके लिअे बड़ी कठिन होती है और अिसीमे से दभ निर्माण होनेका भय रहता है।

काल्पनिक बनाम सात्त्विक आनद

मानवकी अुन्नति और जीवन-विषयक ध्येयकी दृष्टिसे विचार करने पर मालूम होता है कि अिस प्रकारका वैराग्य, भक्ति या आत्मज्ञान अुन्नतिके लिअे वास्तवमे अुपयोगी सिद्ध नही होता, अुलटे अुससे भ्रम और दभ बढनेका और अुसके बाद अिन सबका पर्यवसान दुर्गुणोमें होनेका भय रहता है। आयुके बिलकुल अन्तके अुत्तरकालमें यदि मनुष्य निवृत्ति-परायण हो और अेकाकी रहकर अपना आगेका जीवन पवित्रता-पूर्वक व्यतीत करके शातिसे अपनी जीवन-यात्रा पूरी करनेका प्रयत्न करे, तो अुसका हेतु सिद्ध होना कठिन नही है। परन्तु जीवनकी आशाओ और अुत्साहके समयमे निवृत्ति-परायण होकर, अपनी सारी सुखेच्छाओको मारकर अन्त तक पवित्र जीवन बिताना बहुत कठिन है, क्योकि जीव सुख और आनन्दका भोक्ता है। अुसे चाहे जहासे सुख और आनन्द प्राप्त करनेकी आवश्यकता होती है। अिसीलिअे आत्मा-विषयक कल्पनाओसे, भक्ति-भावनासे, अुसके अनेक प्रकारोसे — चाहे जहासे वह आनन्द निर्माण करनेका प्रयत्न करता है। अिस सारे काल्पनिक आनन्दसे अुसे सच्ची तृप्ति नही होती और चित्तकी सामान्य सुखेच्छाओका भी नाश नही होता। अिसके बजाय मनुष्य यदि जीवनमे किसी भी प्रत्यक्ष सात्त्विक आनन्दको त्याज्य न समझकर विभिन्न सात्त्विक आनन्दोकी खोज कर सके अथवा सासारिक कहे जानेवाले सुख और आनन्द प्राप्त करते हुअे अुन्हे निर्दोष बना सके, तो अुससे स्वय अुसका और अन्य लोगोका भी बडा कल्याण होगा। वैराग्यकी गलत मान्यताके कारण, दु:खके भयके कारण, हम सुखमात्रको, आनन्दमात्रको त्याज्य

समझने लगे, यह अुन्नतिके मार्गमें हमारी बहुत बडी भूल हुअी। कर्ममार्गके आनन्दोंको शुद्ध न बनाकर, अुन्हें सात्त्विक न बनाकर हम अुन्हें पापरूप-दोषरूप मानने लगे, अिसलिअे हमें आत्मा-विषयक, अीश्वर-विषयक कृत्रिम और काल्पनिक आनन्द निर्माण करने पडे और अिसीलिये स्वर्गसुखकी, दिव्य लोककी, और मोक्षसुखकी अतिशयतापूर्ण झूठी कल्पनाओंमें अपने मनको सदा तरंगित रखना पडा। मन कुछ समय तक अुनमें तरंगित रह सकता है, परन्तु अुसकी भी अेक मर्यादा है। यह सारा ही खेल कल्पनाका है। अैसी स्थितिमें अपनी कल्पनाओंमें विभिन्न प्रकारों और प्रयत्नोंसे बल अुत्पन्न करके, अपनी श्रद्धाको दृढ करके अिस खेलको हमें टिकाये रखना पडता है। परन्तु 'बोलाचीच कढी बोलाचाचि भात। जेवूनिया तृप्त कोण झाला?' (शब्दोंकी ही कढी और शब्दोंका ही भात खाकर कौन तृप्त हुआ है?) — का ही न्याय कल्पनाके अिन प्रकारोंमें है। मनकी कल्पित मिठाअीमें हम मानें अुतनी ही मिठास रहनेवाली है। साअिकलको हम जितना चलाते हैं अुतना ही आगे वह हमें ले जाती है। परन्तु कल्पनाकी साअिकलको हम कितना ही क्यों न चलायें, प्रत्यक्ष रूपमें वह अेक अिंच भी हमें आगे नहीं ले जा सकती। अिस न्यायसे केवल कल्पनाजन्य आनन्दके किसी प्रकारमें हमारी अुन्नति करनेका या हमें टिकाये रखनेका सामर्थ्य नहीं होता। अिसकी अपेक्षा यदि कर्ममार्गमें प्रत्यक्ष आनन्द और सुख देनेवाले सात्त्विक साधनोंके पीछे हम लगें, तो अुससे हमारा कर्तृत्व बढ़ेगा, कर्ममार्गमें सुधार होगा और अुसका परिणाम कुल मिलाकर समाज पर भी कुछ हद तक अच्छा ही पडेगा।

मनुष्यों और दूसरे प्राणियोंके साथके अपने संबंधोंको हम पवित्र, अुदार, सुखप्रद और आनन्दप्रद बनानेका प्रयत्न करें, तो अुससे हमें सात्त्विक सुख और आनन्दका अनुभव हुअे बिना नहीं रहेगा। आरोग्यप्रद, अुपयुक्त और तत्काल थोडा-बहुत लाभ पहुंचानेवाले मनोरंजक शरीर-श्रमकी विभिन्न पद्धतियां हम निर्माण करें, तो क्या अुनसे हमें आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती? अथवा किसी भी शरीर-श्रमको हम मनोरंजक बना सकें, तो क्या अुससे आनन्द पैदा नहीं होगा? यदि हम अपने सदाके कार्य — अपने कर्तव्य प्रसन्न मनसे करने लगें, तो क्या वे कार्य ही हमारे लिअे आनन्दप्रद सिद्ध नहीं हो सकते?

निवृत्ति-परायण और विरागी व्यक्तियोके जीवनमे आनन्द और अुत्साह न मालूम होकर रुक्षता, अुदासीनता और नीरसता देखनेमे आती है, अुसका कारण यह है कि अुनकी अपनी और दूसरे लोगोकी भी यह मान्यता होती है कि अुनमें प्रेम, मधुरता और अुत्साह नही होने चाहिये और हो तो अुन्हे नष्ट कर देना चाहिये, तथा अैसे कार्य छोड देने चाहिये जिनसे अिन गुणोका निर्माण हो। परन्तु यह मान्यता गलत है। अिस मान्यताके कारण हम जीवनके सहज सात्त्विक आनन्दको खो बैठे है और आनन्द-प्राप्तिके लिअे काल्पनिक और भ्रामक सृष्टिमे मनको रमानेका प्रयत्न करते है। जीवनमें सात्त्विक आनन्द प्राप्त करते करते हमे अपनी अुन्नति साधनी चाहिये, यह विचार ही अभी तक हमारे गले नही अुतरा है। आनन्दकी और सुखकी अिच्छा कभी नष्ट नही होती, अिसलिअे आत्मा-विषयक धारणामे आनन्दकी अलग अलग भावनायें और भक्तिके निमित्तसे विभिन्न काल्पनिक प्रकार निर्माण होने पर अुनके द्वारा आनन्द अनुभव करनेकी प्रथा पडी। परन्तु अिस सारी कल्पनामय सृष्टिसे चित्तकी तृप्ति नही होती और वह प्रत्यक्ष सुख और आनन्दके लिअे भूखा ही रहता है — अैसा अनेक अनुभवो परसे देखनेमे आता है। अिस मूल अिच्छा पर वैराग्यके कितने ही आवरण चढाये जाय अथवा कृत्रिम आनन्द निर्माण करके चित्तको चाहे जितना समझानेका प्रयत्न किया जाय, तो भी कर्मेन्द्रियो, ज्ञानेन्द्रियो, मन और बुद्धि द्वारा प्रत्यक्ष सुख और आनन्द अनुभव करनेकी स्वाभाविक अिच्छा प्राणीमे सुप्त रूपमे रहती ही है। झूठे प्रयत्नोमे अुसका कभी नाश नही होता। बहुत हुआ तो — और अधिकतर यही होता है — वह केवल विकृत रूप धारण कर लेती है। यदि अैसा न होता तो भरी जवानीमे ससार छोड देनेवाले वैराग्य-निष्ठ व्यक्ति आगे जाकर मठ-मन्दिरकी झझटमे क्यो पडते? अैसे विरक्तोको देखकर स्वभावत कोअी टीकाकी बुद्धिसे कहेगा

निवृत्तिका कृत्रिम आनद

'घरबार छोड दिया, मठ-मन्दिर बनाने लगा।
बेटा-बेटी छोड दिया, चेला-चेली करने लगा॥'

साराश यह कि चित्तकी अवशिष्ट वासना अेक या दूसरे रूपमे बाहर व्यक्त हुअे बिना नही रहती।

अिसलिअे अुन्नति साधनेकी अिच्छा रखनेवालेको कर्ममार्ग छोड़कर — अपने कर्तव्योंको छोड़कर — केवल निवृत्ति-परायण होनेकी आवश्यकता नहीं।

प्रवृत्तिकी शुद्धि

प्रवृत्ति छोड़नेके बाद सच्ची कठिनाअी यही होती है कि चित्तको चौबीसों घंटे सात्त्विक विषय — जिसमें आनन्द और प्रगति दोनोंका लाभ मिल सके — कैसे दिया जाय। कर्तव्य कर्मोंको छोड़नेसे चित्त निवृत्त नहीं होता। अुसका लय करने तककी सिद्धि हमने प्राप्त कर ली हो तो भी वह व्युत्थान दशामें आये बिना नहीं रहता। क्योंकि वह अुसकी स्वाभाविक स्थिति है और लयावस्था अभ्याससे लायी हुअी थोड़े समयकी अवस्था है। अिसलिअे चित्त अपनी स्वाभाविक स्थिति पर कभी न कभी आता ही है, और आनेके बाद अपना सदाका कार्य वह करता ही है। हम प्रतिदिन चार घंटे अपनी आंखोंको बन्द रखनेका अभ्यास बढ़ा लें, तो अुससे आंखोंका देखनेका धर्म नष्ट नहीं हो जाता। अुन्हें चार घंटे तक बन्द रखा जाय या आठ घंटे तक, परन्तु खोलते ही वे अपना देखनेका काम शुरू कर देंगी। यही बात चित्तको भी लागू होती है। अिसलिअे मनुष्यको चाहिये कि वह अुन्नति साधनेके लिअे जल्दबाजीमें प्रवृत्तियोंका त्याग न करे, बल्कि अपनी प्रवृत्तियोंका — अपने चौबीस घंटेके कार्योंका शोधन करे। मनुष्य जो भी कार्य करे अुन सबकी अुसे अच्छी तरह जांच करनी चाहिये। अुनमें अपनी और अन्य लोगोंकी वृत्ति, हेतु, भावना और साधनोंकी तथा अुन सबके स्वयं अपने पर होनेवाले तथा दूसरों पर होनेवाले अन्तर्बाह्य परिणामोंकी शोध अुसे करनी चाहिये। हमारी वृत्तिमें, हेतुमें और साधनोंमें दोष हो तो अुसे दूर करना चाहिये। हमारे कर्मोंके परिणाम किसी भी दृष्टिसे किसी पर भी अनिष्ट होते दिखाअी दें तो अुन कर्मोंमें सुधार करना चाहिये। अिस प्रकार विवेकपूर्वक जांच करके अनुचित कर्मोंका त्याग करना चाहिये। अिसके बाद बाकी बचे हुअे आवश्यक कार्य हमारे कर्तव्य माने जायेंगे। हमें अिस बातका विचार करना चाहिये कि अुन्हें करते हुअे हमारे भीतर अधिक प्रेम, अुदारता, कृतज्ञता, प्रामाणिकता, सरलता, सत्यता, विनय और निर्दोषता आदि गुण कैसे अुत्पन्न किये जा सकते हैं। अपने विवेकको जितना सूक्ष्म, प्रखर और व्यापक बनाया जा सके अुतना बनाना चाहिये और अुस विवेक-शक्तिके द्वारा हमें अपनी प्रवृत्तियोंको शुद्ध करना चाहिये। आवश्यकता प्रवृत्तियोंको छोड़नेकी नहीं,

बल्कि प्रवृत्तियोंको शुद्ध करनेकी है। गृहस्थाश्रमका त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं, परन्तु अुसे अधिक शुद्ध बनाकर सफल करनेकी है।

सात्त्विक आनंद

अिस प्रकार शोध करके विवेकपूर्वक अपनी प्रवृत्तियां निश्चित करते हुअे तथा अुन्हें अमलमें लाते हुअे हमें चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोंकी वृद्धि करनी है — यह बात हम समझ लें तो हमारा मार्ग सरल हो जाता है। किसी भी काल्पनिक सुखकी या कल्पनातीत ध्येयकी अभिलाषा रखकर अुसमें आनन्द माननेसे अथवा अुसके लिअे सदा व्याकुल रहनेसे हमारी अुन्नति नहीं होती। जीवनके प्रत्येक कार्यमें सात्त्विकता लानेसे और कर्मोंको शुद्ध बनानेसे ही हमारी अुन्नति होती है। हमारा प्रत्येक कार्य स्वयं हमारे लिअे और दूसरोंके लिअे लाभदायक सिद्ध होता रहे, अैसी बुद्धि रख कर अुसे निर्दोषतासे करते रहनेसे अुन्नति सधती है। वह कार्य करते हुअे सबके लिअे शुभेच्छा और शुभ कामना रखनेके कारण हमारे हृदयमें सहज ही आनन्द अुत्पन्न होना चाहिये। जिस जिस व्यक्तिके साथ हमारा संबंध हो, अुस अुस व्यक्तिके हृदयमें शुद्ध आनन्द अुत्पन्न करनेकी कला हममें होनी चाहिये। आनन्दके बिना जीवनमें अुत्साह नहीं आ सकता। अुत्साहके बिना जीवनमें कभी महान और कठिन कार्य सिद्ध नहीं हो सकते। अीश्वरने हमें कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि द्वारा आनन्द और सुख देने और पानेकी शक्ति प्रदान की है। अिन सबके द्वारा मनुष्योचित सुख और आनन्दके सात्त्विक प्रकार निर्माण करके अपने और दूसरोंके जीवनमें रस अुत्पन्न करना हमें आना चाहिये। यह सात्त्विक आनन्द हमारी अुन्नतिमें बाधक नहीं होगा, बल्कि सदा अुसका पोषक बना रहेगा। सात्त्विक आनन्द शरीर, बुद्धि अथवा मनकी किसी भी शक्तिमें न्यूनता पैदा नहीं कर सकता। अुलटे, अिन शक्तियोंके अधिक अुज्ज्वल, अधिक शुद्ध और अधिक विकसित बननेमें वह सहायक होता है।

सर्वांगीण विकास

शुद्ध कार्यों द्वारा हमें अपना सर्वांगीण विकास साधना है, अतः अपने शरीर, बुद्धि और मन तीनोंकी शक्ति विकसित और शुद्ध करनेका हमारा आग्रह होना चाहिये। अुसके लिअे हमारा शरीर नीरोग, बलवान और चपल बनना चाहिये। हमें अपने शरीरमें ये गुण पैदा करना आना चाहिये। अिसके लिअे जिन साधनोंका हम अुपयोग करें, जो अुपाय हम काममें लें, अुनसे हमारी बुद्धिका

विकास हो और हमारा मन भी आनन्दित रहे, अैसी योजना हमें सूझनी चाहिये। अिसी प्रकार हमें अिस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि बौद्धिक विकासके साथ हमारा मन भी शुद्ध और अुदात्त बने और मानसिक अुन्नतिके साथ हमारे शरीर और बुद्धिका भी विकास होता रहे। हमारे मनो-रंजनके साधन न केवल निर्दोष होने चाहिये, बल्कि मनोरंजनके साथ-साथ हमें ज्ञान मिलता रहे, मनकी पवित्रता बढ़ती रहे और शरीरको किसी प्रकारकी हानि पहुंचे बिना कुछ शारीरिक गुणोंका भी लाभ मिलता रहे, अैसी व्यापक योजनाशक्ति हममें होनी चाहिये। हमने जीवनका ध्येय — अपने सर्वांगीण शिक्षणका ध्येय अिस प्रकारका निर्धारित किया हो तो हमें अैसी योजना जरूर सूझेगी। परन्तु सच्ची जीवन-सिद्धि अिसीमें है, अैसी हमारी दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिये।

हमारा यह विश्वास होना चाहिये कि सात्त्विक आनन्द हमारी अुन्नतिके लिअे आवश्यक है। प्रेम, वात्सल्य, मैत्री, मधुरता आदि सद्गुणोंके कारण मनुष्योंमें परस्पर जो आकर्षण होता है वह अुन्नतिमें बाधक नहीं होता। मातृ-प्रेम, पितृप्रेम आदि कौटुम्बिक प्रेमके प्रकार वैराग्यमें न्यूनता पैदा करनेवाले नहीं हैं; अितना ही नहीं, शुद्ध दाम्पत्य-प्रेम भी हमारी अुन्नतिमें साधक होता है। ये बातें हमें मानव-मनके विकासकी दृष्टिसे विचार करके समझ लेनी चाहिये। मानवीय सद्गुणों और अुनके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले मानवोचित आनन्द और सुखकी मददसे ही हमें अपनी अुन्नतिके शिखर पर पहुंचना है।

धर्मत्यागसे होनेवाली हानि

अिस दृष्टिसे हमने अुन्नतिका विचार नहीं किया, अिसलिअे हमारा बड़ा अहित हुआ है। व्यक्ति, कुटुम्ब और समाजकी अुन्नति न होनेसे हम अनेक सद्-गुणोंसे वंचित रह गये हैं। हम काल्पनिक और असंभव ध्येयोंको मानते रहे। अुनके लिअे निवृत्ति-परायण बनकर सादी सर्वसामान्य सुविधाओंके भी त्यागको — अितना ही नहीं जान-बूझकर कुछ दुःख निर्माण करके अुन्हें सहन करते रहनेको — हमने साधन माना, और केवल आनन्द-विघातक कल्पनामें आनन्द और सुखकी भूख मिटाने लगे। प्रवृत्ति-मार्गी बनकर हमने कम माना। प्रेम, मैत्री, वात्सल्य — अिन सद्भावनाओंसे और अुनके अनुरूप कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले आनन्दको भी हमने त्याज्य समझा,

अिसलिअे हमने अपना जीवन नीरस और सूखा बना डाला। अैसी स्थितिमें मनका टिका रहना संभव न होनेके कारण अुसीमें से दंभ अुत्पन्न हुआ। परम अुच्च माना हुआ ध्येय हमें प्राप्त नहीं हो सकता। सात्त्विक आनन्द प्राप्त करनेकी कला, साधन और अुपाय हम जानते नहीं। जानते हों तो भी निवृत्ति-परायणता स्वीकार की है अिस कारण अथवा वैसी जीवन-पद्धतिके कारण वह आनन्द हमसे भोगा नहीं जा सकता। अैसी स्थितिमें हम कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकते। जो लोग जीवनको अिस रूक्षता और नीरसताको सह नहीं सकते, वे अन्तमें क्षुद्र आनन्द पर आ पहुंचते हैं। और अुनमें से कोअी साधुताकी पदवीको पहुंच चुके हों, तो अुसमें मिलनेवाली मान-प्रतिष्ठाके कारण और शुद्ध कर्ममार्गके अभावमें कर्मका सात्त्विक आनन्द न प्राप्त कर सकनेके कारण वे क्षुद्र आनन्दमें ही तृप्ति मान लेते हैं। मानव-जीवनकी दृष्टिसे अैसे लोगोंको अवनति और दंभमें ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

समाजके सभी लोग निवृत्ति-परायण नहीं होते, तो भी निवृत्तिको महत्त्व प्रदान करनेके कारण संसारमें — कर्ममार्गमें लगे हुअे लोगोंके मनमें यह भावना नहीं रही कि प्रवृत्ति छूट भले न सके परन्तु अुसे शुद्ध रूपमें चलाना चाहिये। वह पापरूप ही रहनेवाली है, अैसी मान्यताके कारण अुसे कभी सुधारनेका प्रयत्न नहीं किया गया। अुलटे, हमारे यह मानते आनेके कारण कि जब वह पापरूप ही रहनेवाली है तब तो कितने भी दोष करनेमें हर्ज नहीं, अुसमें स्वच्छन्दता और स्वैराचार बढ़ गया। अिस प्रकार प्रवृत्ति और निवृत्तिकी गलत कल्पनाके कारण हमारा अकल्याण होता आया है। अत अव हमें अुचित विवेकका अुपयोग करके समझना चाहिये कि शुद्ध बुद्धिसे चलाया हुआ कर्ममार्ग हमारे जीवनका सच्चा ध्येय सिद्ध करनेमें समर्थ है। हम सबकी अुन्नतिमें वही सहायक होगा। अुस मार्गको यथा-संभव सरल, निर्दोष, पवित्र और यथासंभव मानवोचित सुख तथा आनन्दसे पूर्ण बनानेका आधार हमारी पवित्रता, बुद्धिमत्ता और योजना-शक्ति पर है। मनुष्य अपनी बुद्धिका व्यापक अुपयोग करके व्यवहारके विभिन्न क्षेत्रोंमें अपनी सुख-सुविधाके विभिन्न साधन निर्माण करता है। वह अिस क्षेत्रमें भी जीवनकी अुन्नतिके संबंधमें अपनी बुद्धिका अुपयोग करे, तो अिसमें भी अुसे योग्य ज्ञान और योग्य साधनोंकी प्राप्ति हुअे बिना नहीं रहेगी।

२

पारिवारिक संबंधों द्वारा गुण-विकास

[अेक नवयुवकके साथ हुअी बातचीत. सन् १९४७]

प्र० — आप कहते हैं कि अुन्नतिके लिअे घर छोड़कर भिन्न परिस्थितिमें रहनेकी आवश्यकता नही। परन्तु अपने व्यक्तिगत अनुभवसे मुझे यह सही नहीं लगता। मुझे लगता है कि मैं घरमें न रहकर यदि अनुकूल परिस्थितिमें रहूं, तो मेरा विकास होगा और मुझमें सद्गुणोंकी वृद्धि होगी।

अु० — घरकी कौनसी बातें आपके विकासको रोकती हैं, यह मेरे खयालमें नही आता। आप मुझे बतायें कि आप किस विशेष गुणकी वृद्धि चाहते हैं, जो केवल घरकी परिस्थितिके कारण नही हो सकती।

प्र० — मान लीजिये कि मुझे निर्भय बनना है। तो घर रहकर निर्भयताका गुण कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

अु० — निर्भय बननेका अर्थ क्या है? जीवनके जिन जिन अुचित व्यवहारों और प्रसंगोंमें जिस जिस दिशासे आपको भय लगनेकी संभावना है, अुस अुस दिशामें अच्छे अुपायों द्वारा भयरहित बनना — अितना ही निर्भयताका अर्थ और अिस गुणकी व्याप्ति आप समझेंगे न? निर्भयताके अर्थ और व्याप्तिकी आपकी यह कल्पना तो नही है न कि पहाड़ परसे नीचे कूदनेमें, आगमें कूद पड़नेमें अथवा चाहे जैसे भयंकर कृत्य करनेमें आपको भय नही लगना चाहिये?

प्र० — निर्भयताका मैं अैसा अर्थ नही करता। परन्तु मैं चाहता हूं कि जीवनके आवश्यक क्षेत्रमें व्यवहार करते हुअे मुझे सहज ही निर्भयता अनुभव होनी चाहिये।

अु० — तो आपको विचार करके यह खोज निकालना होगा कि कौन-कौनसे आवश्यक क्षेत्रमें आपको भय मालूम होता है और किसलिअे मालूम होता है।

प्र० — बाहरके सार्वजनिक कार्योंके अवसरों पर मुझे आत्म-विश्वास नही महसूस होता। अिसके विपरीत, अुस समय अेक प्रकारका भय — संकोच मालूम होता है।

अु० — बहुत वर्ष पहले आप कॉलेजमे पढते थे, तब मैंने अेक बात आपसे कही थी। वह आपको याद है? अुस समय मैंने कहा था कि आप विद्यार्थियोंके अगुवा बनकर अेक-दो कार्य कीजिये। छोटी अुमरसे जिन विद्यार्थियोको अिस तरहके कार्य करनेकी आदत पड जाती है, अुनमे अुन कार्योकी वजहसे स्वभावत अेक प्रकारका धैर्य अुत्पन्न होता है। अुनका भय मिट जाता है। विद्यार्थियोको बचपनमे विद्यार्थियोमे अथवा बडी अुम्रके लोगोकी सभामे बोलने — भाषण करने तथा कार्य करनेकी आदत हो जानेमे अुनका सभा-क्षोभ बचपनमे ही स्वभावत मिट जाता है और बोलनेकी हिम्मत खुल जाती है। बादमे आयु, कार्य और अवसरके अनुसार अिस गुणका विकास होता जाता है। मनुष्यको स्वय अपने गुणोमे न्यूनता लगनेमे सकोच और भय मालूम होता है और आत्म-विश्वास नही रहता। हमे प्रयत्न करके अपनेमे गुणोका विकास करना चाहिये। शारीरिक बल और योग्यताकी कमीके कारण यदि भय लगता हो, तो बल और योग्यता प्राप्त करके हमे यह भय दूर करना चाहिये। यही बात बुद्धि तथा मानसिक गुणोको भी लागू होती है। किसी भी गुणमे हमे पीछे न रहना चाहिये। अैसा करेंगे तो ही हमारा भय और सकोच मिटेगा और हमारे भीतर आत्म-विश्वास अुत्पन्न होगा। निर्भयता कोअी अैसा गुण नही है जो किसी खास अुपायसे हममे अपने-आप आ जाय, धीरे धीरे प्रयत्नके फलस्वरूप जिस दिशामे हमारी न्यूनता मिटेगी अुसी दिशामे हम निर्भय बनेंगे, और अुस सबके परिणामस्वरूप हममे सामान्यत निर्भयता आयेगी और बढेगी। निर्भय होनेका सच्चा मार्ग यही है। घर रहकर यह गुण सिद्ध किया जा सकता है। जब भयकी अुपेक्षा करनेका कोअी प्रत्यक्ष प्रसग आता है, तब अुसे हम निर्भयता बढानेके अवसरके रूपमे नही पहचानते। घर रहकर भी यथाशक्ति सार्वजनिक कार्यमे भाग लेकर अुसके योग्य बननेका प्रयत्न करते रहे, तो हम अिस तरहका साहस बढा सकते है। जिसके लिअे घर छोडनेकी कोअी जरूरत मालूम नही होती। घरमे सद्गुणी बननेका प्रयत्न न करके यदि हम अैसा व्यवहार रखे जिसमे परिवारके सदस्योके लिअे किसी प्रकारके कष्ट और कठिनाअिया हमे अुठानी न पडे, घरमें भी किसीके लिअे हमे असुविधा भोगनी न पडे, तो घरसे बाहर जाने पर भी हम क्या सिद्ध करनेवाले है? बाहर भी हम घरमें पडी हुअी

आदतो और स्वभावको ही बढायेगे और मजबूत बनायेगे। घरकी हमारी स्वार्थ-साधक और स्वसुख-लक्षी वृत्ति बाहर भी वैसी ही रहेगी। स्थान बदलनेसे मनुष्यकी वृत्ति या स्वभावमे कोअी फर्क नही पडता। घर छोड-कर बाहर जानेसे और लोगोके बीच काम करनेसे अुन्हे और हमे नवीनताके कारण कुछ समय तक शायद थोडा अच्छा लग सकता है। हो सकता है कि कुछ समय तक हम अपनी स्वार्थवृत्ति किसीको न बतावे। स्थान-परिवर्तन या नवीनताके आनन्दके कारण अुस समय हमारी वृत्तिमे थोड़ा प्रेम और अुदारता आअी हुअी भी शायद दिखाअी दे। परन्तु वह आभास अधिक समय तक टिकेगा नही। बदली हुअी परिस्थितिमे जैसे-जैसे स्थिरता आयेगी, जैसे-जैसे नवीनता घटती जायगी, वैसे वैसे हम फिरसे अपने पूर्व स्वभाव पर आते जायेगे, और घरमे हम जिस कृपण वृत्तिमे व्यवहार करते थे वह फिरसे प्रकट हुअे बिना नही रहेगी। मुख्य बात यह है कि जब तक हम सुखभोगी और स्वार्थी रहेगे, जब तक हम अुन्नति और गुणोके अुपासक नही बनेगे, तब तक घरमे रहे या बाहर रहे हमारी स्थितिमे कोअी फर्क नही पडेगा। मराठीमे अिस आशयकी अेक कहावत है: 'कोकणसे निकल कर देशमे गये तो वहा भी पलासके तीन ही पान दिखे।' अुसमे यही अर्थ समाया हुआ है।

यदि वास्तवमे आप गुणोके अुपासक होगे, सचमुच ही आपमे सद्‌गुण होगे, तो वे घरमे भी जरूर प्रकट होगे और बढेगे। जैसे-जैसे अुनका विकास होगा, वैसे-वैसे आपके अुन गुणोका प्रभाव घरसे बाहरके क्षेत्रमे भी अपने-आप पडेगा। बागके फूलोकी सुगन्ध बागमे और बागके बाहर भी फैलती है। परन्तु कोअी यह कहे या कल्पना करे कि फूलोकी सुगन्ध बागमे तो नही फैल सकती परन्तु बागके बाहर फैल सकती है, तो अिसे कहा तक ठीक माना जायगा? यह हो सकता है कि आपके सद्‌गुणोकी घरमे आवश्यकता न होनेसे वहा अुनका अुपयोग करनेके अवसर न आते हो, अथवा वहा अुनके विकासकी गुजाअिश न हो। परन्तु यह समझना गलत है कि आपके जिन गुणोकी आवश्यकता घरमे है वे घरमे न प्रकट होकर बाहर ही प्रकट होगे। अिसलिअे घरमे जिन जिन अवसरो पर जिन जिन गुणोकी आवश्यकता हो, अुन अुन अवसरो पर आपके वे गुण प्रकट होने चाहिये; अुन अवसरोके लिअे आवश्यक गुण आपको अपनेमे बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिये।

प्र०—मुझे लगता है कि घरमें गुणोंका विकास होनेके अवसर बहुत कम आते हैं।

उ०—अैसा क्यों कहते हैं? घर कहो या बाहरकी संस्था कहो, जहां जहां मनुष्य समूहमें रहते हैं वहां अेक-दूसरेके सहयोग, अेक-दूसरेकी सहायता और अेक-दूसरेके सुख-दुःखमें सहानुभूतिकी जरूरत रहती ही है। अिनके बिना मनुष्य समूहमें रह ही नहीं सकते। और समाजमें परस्पर सहकार, सहायता तथा सहानुभूतिकी भावना कायम रहे, अिसके लिअे मनुष्योंमें प्रेम, प्रामाणिकता, विश्वास, अुदारता, दूसरोंके लिअे कष्ट सहनेकी वृत्ति, क्षमा, निष्कपटता, अनालस्य, परस्पर निर्भयता, निःसंकोचता, सत्य-निष्ठा आदि सद्गुण होने चाहिये। थोड़े भी सद्गुण न हों तो समूह बन ही नहीं सकता, और कभी बन भी गया तो वह टिक नहीं सकता — भले वह समूह घरका हो या घरके बाहरका हो। घर छोड़कर संन्यासी बनना हो तो बात अलग है, क्योंकि अैसे मनुष्यको तो अेकाकी रहना है। परन्तु यदि वह समाजमें रहता हो तो अुसे अन्य मनुष्योंके साथ व्यवहार करनेका मौका आने पर गुणोंका प्रश्न अवश्य अुठेगा। अब आप ही सोचकर कहें कि घरमें गुणोंके विकासकी गुंजाअिश और मौका है या नहीं? मनुष्योंके साथ ही नहीं परन्तु अन्य प्राणियोंके साथ भी हमारा जो संबंध आता है, अुसमें भी मनुष्य अपना गुण-विकास कर सकता है और अुस परसे अपनी अुन्नतिका नाप निकाल सकता है। तो क्या घरमें, जहां हमारे माता-पिता, भाअी-बहन आदि जन्मसे ही प्रेम-संबंधवाले लोग रहते हैं और जो हमारे कर्तव्य-धर्मका प्रथम क्षेत्र है, हमारे सद्गुण प्रकट होनेके अथवा अुनके विकासके कम अवसर हैं? परन्तु यदि हमारी समझमें, विवेकमें और दृष्टिमें दोष हो, हमारा चित्त सदैव जाग्रत न रहे, तो संभव है कि गुण-दक्षताके, गुण-जागृतिके और गुण-विकासके अुचित अवसर हमारे सामने आकर चले जायं तो भी हम अुन्हें पहचान न सकें। जो लोग विवेकी और सावधान हैं, अुन्हें घरमें प्रतिदिन अैसे अवसर मिलते रहते हैं।

प्र०—सद्गुणोंके विकासकी तरफ पहले मेरा लक्ष्य नहीं था। परन्तु जैसे जैसे आपकी बात समझता गया, वैसे वैसे सद्गुण-विकास पर मेरी श्रद्धा जमती गअी। मेरी समझमें आ गया कि हमें सद्गुण प्राप्त करने चाहिये और मैंने सद्गुणी बननेका आदर्श अपने सामने रखा।

अु० — बडी अच्छी बात है। परन्तु आपको अिसकी जाच कर लेना चाहिये कि जो आदर्श अपने समक्ष रखनेका आप कहते है वह वास्तवमे आपका आदर्श है या केवल अभिलापा है। वह वास्तवमे ही आपका आदर्श हो, तो अब तक कुछ अशमे अुसकी सिद्धि आपने कर ली होनी चाहिये। मनुष्य जिस वस्तुकी अन्तःकरणमे अिच्छा करता है, अुसे प्राप्त करनेका वह सदा प्रयत्न करता रहता है। अुस प्रयत्नमें वह अपनी सपूर्ण शक्ति लगा देता है। साथ ही, वह अपनी कर्तृत्व-शक्ति भी बढाता है। अनुकूल सयोगोको अधिक अनुकूल बनानेका और प्रतिकूल संयोगोको भी अपने अनुकूल बनानेका वह सदा प्रयत्न करता है। और अिस सब परसे यह समझमे आता है कि अपना आदर्श सिद्ध करनेके विषयमे अुसकी अिच्छा कितनी प्रबल है। जिसे धनवान बननेकी महत्त्वाकाक्षा है, वह धन कमाने अथवा अेकत्र करनेका अेक भी मौका कभी हाथसे जाने नही देता। और अुस परसे यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि अुसका आदर्श धनवान बननेका है। परन्तु जिसे धनप्राप्तिकी केवल अिच्छा ही हो, जो अुसके बारेमें किसी तरहका प्रयत्न न करता हो, जो साधारण किफायतशारी करना भी न जानता हो, अुसके विषयमे क्या यह कहा जा सकता है कि अुसका आदर्श धनवान बननेका है? धन मिले तो अच्छा, अैसी जिसकी वृत्ति है परन्तु जो अुसके लिअे कोअी प्रयत्न नही करता, अुसके विषयमे अितना ही कहा जायगा कि अुसे धनकी अभिलापा है। अिसी प्रकार जिसे लगता है कि सद्‌गुणी हो सकू तो अच्छा है, परन्तु जो अिसके लिअे थोड़ा भी प्रयत्न नही करता, अुसके सबधमे अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता है कि अुसे सद्‌गुणी बननेकी अभिलापा है। आदर्श और अभिलापाके बीच यह भेद है। धन, विद्या, कीर्ति, सज्जनता आदि बाते अच्छी मानी गअी है, अिसलिअे प्रत्येक मनुष्य अुन्हे प्राप्त करनेकी अभिलापा रखे यह स्वाभाविक है। परन्तु अिनमे से अेक-दो वस्तुअे प्राप्त करना जो अपने जीवनका ध्येय अथवा आदर्श मानता है, अुसे अुनकी प्राप्तिके लिअे सदा प्रयत्नशील रहना ही होगा। क्या आप कह सकते है कि आप अैसी कौनसी वस्तुके लिअे प्रयत्नशील है? क्या आपको याद आता है कि घरकी किसी विशेष कठिनाअीके समय आपने स्वेच्छासे कष्ट भोगकर दूसरोकी थोडी भी मुसीबते दूर की है?

घरमें शुभ हेतुसे दूसरोके लिये कष्ट सहे विना परस्पर प्रेम, विश्वास और आदर अुत्पन्न नही होते, न वे वढते है।

हमारे दैनिक जीवनमे गुण-विकासके छोटे-मोटे अवसर हमेशा मिलते ही रहते है, फिर भी हम अुन्हे पहचान नही पाते और यह समझ लेते है कि गुणोकी प्राप्तिके लिअे अन्यत्र कही जाना चाहिये। कुछ गुणोके विकासके लिअे विशाल क्षेत्र आवश्यक होता है। परन्तु घरमे अुन गुणोका विकास करके ही आगे विशाल क्षेत्रमे जाना चाहिये।

यह सच हे कि घरमे हम अेक-दूसरेके लिअे प्रेमसे जो कष्ट अुठाते है, असुविधाये भोगते है, त्याग करते है तथा अेक-दूसरेको निभा लेनेकी जो अुदारता और क्षमावृत्ति वताते है, अुसमे हमे वाहरके कार्यो जितनी प्रसिद्धि नही मिलती। अिस कारणसे घरकी वातोमे हमे अितनी भव्यता नही मालूम होती। परन्तु यह वस्तु हमारे ध्यानमे नही आती कि सार्वजनिक क्षेत्रमे अथवा घरके वाहर किसी भी क्षेत्रमे कितनी ही वाते केवल कीर्ति, प्रतिष्ठा, भव्यता या किसी प्रलोभनके कारण ही की जाती है। वाहरके क्षेत्रमे नैतिक गुणोका अश थोडा होने पर भी कीर्ति और प्रतिष्ठाका अश पूरा पूरा होता हे, अिसलिअे साधारण मनुष्य वैसे कार्योकी ओर स्वभावत आकृष्ट होते है। परन्तु जिसे जीवनकी शुद्धि और सिद्धि प्राप्त करनी हो, सद्गुणोका विकास करके जीवनको सार्थक वनाना हो, अुसे घर या वाहर हर जगह चित्तकी शुद्धि और सद्गुणोके अुत्कर्षको ही महत्त्व प्रदान करना चाहिये। अिसके सिवा अन्य किसी भी प्रलोभनमे न पडनेकी अुसे सावधानी रखनी चाहिये।

मेरे कहनेका यह अर्थ नही कि घर छोडना किसी भी हालतमे जरूरी नही है। हमे आवश्यक ज्ञान, विद्या, कला आदिकी प्राप्तिके लिअे किसी समय घर छोडकर विशिष्ट स्थान पर जाना पड सकता है। अुसी प्रकार सभव है चित्तका अभ्यास करनेके लिअे हमे घर छोडकर वाहर जाना पडे परन्तु वाहर जाकर भी वहाकी परिस्थितिका पूरा लाभ हम तभी अुठा सकते है, जव विकास और अुन्नतिके लिये घरकी परिस्थितिका हमने पूरा अुपयोग कर लिया हो। अपने किन्ही दोषोके कारण हम घरमे रहकर अपना विकास न साध सकते हो, सद्गुण प्राप्त न कर सकते हो या अपने दोष दूर न कर सकते हो, फिर भी अपनेको निर्दोष माने और केवल

घरकी परिस्थितिको ही प्रतिकूल मानकर बाहर चले जायं, तो मुझे नही लगता कि अुन्नतिकी दृष्टिसे नअी परिस्थिति हमारे लिअे किसी तरह अुपयोगी सिद्ध होगी। बाहर जानेके बाद भी अपने दोष दूर किये बिना हमारी अुन्नति सभव नही है। अत महज किसी जगह रहने या जानेको महत्त्व नही देना चाहिये, महत्त्व तो अिसका है कि हम कहा जाकर शुद्ध हो सकते है, शुद्ध रह सकते है और सद्‌गुणोका अनुशीलन कर सकते है। यह सच है कि अनुकूल परिस्थितिमे कुछ गुणोका विकास जल्दी होता है। तो भी हमे खोज करके अिस बातका पता लगाना चाहिये कि गुण-विकासके लिअे केवल हमारी आजकी परिस्थिति बाधक है अथवा हमारे ही शिथिलता और अुन्नति-विषयक आस्था तथा प्रयत्न-सबधी अुदासीनता जैसे कोअी दोष अिसमे बाधक हो रहे है। हममे कोअी दोष न हो और अिस बातका विश्वास हो जाय कि केवल घरकी परिस्थिति ही हमारे विकासमे बाधक है, तो ही घर छोड़कर किसी अुचित स्थान पर जाना ठीक माना जा सकता है। परन्तु अैसा विश्वास होनेके पहले ही केवल स्थान बदलनेसे लाभ होगा, यह निश्चित रूपसे नही कहा जा सकता। अत अिस विषयमे अत्यन्त विवेकपूर्वक निर्णय करना ठीक होगा।

३

विवाहका हेतु

आप विवाहके विषयमे मेरे विचार जानना चाहते है। विवाहका प्रश्न केवल व्यक्तिका प्रश्न नही है। व्यक्ति और समाज दोनोके हित और कल्याणकी दृष्टिसे अिसका विचार किया जाना चाहिये। प्रेम-विवाह हो या पुरानी पद्धतिका विवाह हो, जिसमे व्यक्ति और समाजके हितका विचार न किया गया हो अुसे सदोष पद्धति मानना चाहिये। भोगकी अिच्छाके बिना विवाह नही हो सकता। फिर भी जिस भोगमे व्यक्ति और समाजके स्वास्थ्य, बल, शारीरिक-बौद्धिक-मानसिक अुन्नति, स्फूर्ति, मनुष्य-जातिकी निरन्तरता तेजस्विता, परस्पर अेकता, प्रसन्नता आदिका विचार किया जाता है, वह सदोष नही माना जाना चाहिये। विचारहीन विवाह-पद्धति, भले वह नअी हो या पुरानी, सदोष ही है।

मानव केवल भोग-विलाससे सुखी नहीं हो सकता। अुसकी या मनुष्य-जातिकी अुन्नति भोग-विलाससे नहीं हो सकती। पशु-पक्षियोंमें भी कोअी प्राणी केवल भोगासक्त नहीं मिलेगा। मनुष्यत्वका विकास भोगमें नहीं, परन्तु संयममें है। संयमसे ही मनुष्यता सिद्ध की जा सकती है।

पुरानी विवाह-पद्धतिसे आज तक काफी अनर्थ हुअे हैं, और आज जो प्रेम-विवाहकी पद्धति प्रचलित हो रही है अुससे भी मनुष्यके कल्याण जैसा कुछ मालूम नहीं होता। अुसमें अुच्छृंखलता और चंचलताका ही दर्शन होता है, अेक भी अुदात्त गुण नहीं दिखाअी पड़ता। भोगमें भी अन्तमें संयम सिद्ध करनेका विचार जिस पद्धतिमें नहीं होता, वह व्यक्ति या मनुष्य-जातिके लिअे लाभदायी नहीं हो सकती। केवल किसी प्रकारकी पद्धति ही कल्याणकारी नहीं होती। जिसमें कल्याणका विचार हो, वही विवाह योग्य कहा जायगा।

आकर्षणको प्रेम मानना और जिस प्रकारके प्रेममें कल्याण समझना बहुत बड़ी भूल है। पुरानी विवाह-पद्धतिमें सुधार होना आवश्यक है। अुसके दोष विचारपूर्वक दूर किये जाने चाहियें। केवल वर्णान्तर विवाह दोषपूर्ण नहीं है। अुसमें अुन्नतिका विचार हो तो अुसे लाभदायी मानना चाहिये। मैं संयमको महत्त्व देता हूं। जिस प्रकार अन्य सब विषयोंमें संयम और मानव-जातिके अभ्युदयका विचार होना चाहिये, अुसी प्रकार विवाहमें भी होना चाहिये। केवल आकर्षणके लिअे किया जानेवाला विवाह आदर्श विवाह नहीं कहा जा सकता।

ब्रह्मचर्यका बहुत बड़ा महत्त्व है, अिसमें शंका नहीं। परन्तु ब्रह्मचर्य किस तरह सिद्ध किया जाय, अिसका विचार हमारे लोगोंने नहीं किया। अिसका कोअी विशेष साधन अभी तक मनुष्यको प्राप्त नहीं हुआ है। साधन प्राप्त नहीं हुआ, अिसलिअे हम केवल अुसकी महिमा ही गाते आये हैं। हमारी यह मान्यता है कि ब्रह्मचर्यका महत्त्व प्रतिपादन करनेसे ब्रह्मचर्यकी सिद्धि होगी। साधन न मिलनेके कारण मनुष्य ब्रह्मचर्यसे गिरता है। ब्रह्मचर्यकी अिच्छा होने पर भी मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता, अिसका कारण साधनका अभाव ही है। अैसी स्थितिमें अेक-दूसरेको दोष देना अज्ञान, अन्याय और दंभका लक्षण है। दोष देनेवालेको ब्रह्मचर्य सिद्ध हो गया है, अैसी बात नहीं, और अुसके पास अिस सिद्धिका कोअी साधन भी नहीं है। वह केवल अुसके महत्त्वका प्रतिपादन ही कर सकता है।

वैवाहिक जीवनमें भी जिसकी दृष्टि संयम पर होती है, वह चाहे तब यह सिद्धि प्राप्त कर सकता है। विवाह अिस सिद्धिके लिअे ही है। विवाह किये बिना जो यह सिद्धि प्राप्त कर सकता है, अुसे विवाहकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु अुसे भी किसी तरहके अभ्यास या साधनकी आवश्यकता रहती ही है।

कोअी दूसरेके विवाहमें सहायता दे तो अुनसे यह न समझना चाहिये कि अुसका अुद्देश्य ब्रह्मचर्यके विरुद्ध है। विवाह करके कोअी मनुष्य अधिकाधिक भोगासक्त हो तो समझना चाहिये कि अुसका पतन हो रहा है; और अुसी साधनसे यदि वह संयमकी दिशामें आगे बढ़ता हो तो मान सकते हैं कि वह अुन्नत हो रहा है। विवाह किये बिना भोगासक्त होनेकी अपेक्षा विवाह करके जीवनका मार्ग निकालना अधिक अच्छा है। अिसमें अधिक सुरक्षितता है, अधिक प्रामाणिकता है।

अेक पत्र, १९–२–'३७

४

गृहस्थाश्रमका महत्त्व और अीश्वर-निष्ठा

[संवादके रूपमें चर्चा]

प्र० — आप मुझे अीश्वरके विषयमें कुछ ज्ञान देंगे?

अु० — मुझे लगता है कि अिस विषयमें कोअी बात करनेसे पहले आप मुझे यह बता दें तो ठीक होगा कि अीश्वरका ज्ञान आप किस लिअे चाहते हैं।

प्र० — हमारे समाजमें देवपूजा कुल-परम्परासे चली आअी है। बचपनसे हम यह पूजा करते आये हैं। अिसके संस्कारके कारण अीश्वर-विषयक ज्ञानकी जिज्ञासा रहती है। अिसी प्रकार धर्मग्रन्थोंमें भी अीश्वरके ज्ञानकी महिमा गाअी गअी है। साधु-सन्त भी अैसा ही कहते हैं। अिस सब परसे लगता है कि अीश्वरका ज्ञान हो तो अच्छा।

अु० — परन्तु अिस संस्कार, अिस वाचन, अुपदेश आदिको छोड़कर अीश्वरके विषयमें विचार करें, तो जीवनके लिअे आवश्यक दूसरे ज्ञानकी

प्राप्तिके विना जिस तरह हमारा काम रुकता है, वैसे ही क्या आपको लगता है कि ओीश्वरके ज्ञानके अभावमें भी हमारा काम रुकता है?

प्र० —प्रतिदिनके व्यावहारिक ज्ञानकी तरह ओीश्वर-विषयक ज्ञानकी जीवनमें आवश्यकता नहीं मालूम होती, तो भी अुसके ज्ञानसे मनुष्यको परम शान्ति प्राप्त होती है, अैसा शास्त्र कहते हैं।

अु० —यदि परम शांतिका अर्थ अशान्तिका संपूर्ण अभाव हो, तो आपको जीवनमें मालूम होनेवाली अशान्तिका संबंध ओीश्वर-विषयक अज्ञानके साथ है या नहीं, यह पहले हमें जान लेना चाहिये। यदि हमें स्पष्ट रूपसे यह समझमें आ जाय कि ओीश्वरके ज्ञानके सिवा अुस अशान्तिका कोअी अिलाज ही नहीं है, तो अुसके ज्ञानका विचार करेंगे।

प्र० —अमुक प्रकारकी अशान्तिका कारण ओीश्वर-विषयक ज्ञानका अभाव है अैसा नहीं कहा जा सकता, तो भी मनुष्यके जीवनमें दुःखके मौके बार-बार आते ही रहते हैं। अुनमें से कुछ दुःखोंको टालना हमारी शक्तिसे बाहर होता है। अैसे समय ओीश्वर पर रही हमारी श्रद्धाके कारण दुःखमें भी थोड़ा धैर्य रहता है और दुःख असह्य नहीं मालूम होता। अिसके सिवा जन्म-मरणसे मुक्त होनेका भी प्रश्न है। और ओीश्वरके ज्ञानके सिवा जन्म-मरणसे मुक्ति नहीं मिलती अैसा धर्मग्रन्थोंमें कहा गया है।

अु० —अिस परसे मालूम होता है कि आपका हेतु ओीश्वर-ज्ञान नहीं, परन्तु दुःख-निवारण और जन्म-मरणसे मुक्ति है। ओीश्वर-ज्ञान आपका साध्य नहीं, परन्तु साधन है। मुझे लगता है कि दुःखके समय मनुष्यमें विवेक, धैर्य और सहिष्णुताके गुण पूरी मात्रामें हों, तो बहुतसे दुःख अुसे सौम्य, सहन करने जैसे, मालूम होंगे। गुणोंके अनुशीलनसे गुण बढ़ते हैं। अिन गुणोंके साथ ही मनुष्यमें दृढ़ ओीश्वर-निष्ठा भी हो तो वे अधिक प्रभावशाली बन सकते हैं। निष्ठासे हमारे सद्‌गुणोंका बल बढ़ता है। निष्ठावान मनुष्य जीवनमें कभी निराश नहीं होता। अिसलिअे जीवनमें ओीश्वर-ज्ञानकी अपेक्षा ओीश्वर-निष्ठाकी आवश्यकता अधिक है।

वर्तमान जीवनके दुःख मिटें, कमसे कम वे सह्य तो बनें और दुःखोंसे स्थायी मुक्ति प्राप्त करनेके लिअे जन्म-मरण मिट जाय —यह अिच्छा अपने प्रयत्नसे पूरी की जा सकती है अैसा मनुष्यको नहीं लगता, अिसलिअे वह ओीश्वरकी सहायताकी अपेक्षा रखता है और अिसीलिअे अुसके

ज्ञानकी भी अिच्छा करता है। पहले हम जन्म-मरणके दुःखका और अुससे मुक्त होनेका विचार करें। बादमें वर्तमान जीवनके दुःखोंका दूसरा कोअी अुपाय खोजा जा सकता है या नहीं अिसका विचार करेंगे।

मुक्ति वास्तवमें मनुष्यको प्राप्त होनेवाली अवस्था है या वह भी अनेक भ्रमों जैसा अेक भ्रम ही है, अिस प्रश्नको अभी छोड़ दें और अैसा मानें कि वह सचमुच प्राप्त होनेवाली अवस्था है, तो भी यह सिद्ध नहीं होता कि अुसके लिअे ओश्वर-प्राप्तिकी या अुसके ज्ञानकी आवश्यकता है। मुक्तिकी अिच्छा हम क्यों करते हैं? जन्मके दुःख, जीवनके दुःख और मृत्युके दुःख जैसे दुःखोंकी कल्पनाके कारण हम भयभीत रहते हैं अिसीलिअे न? अिस विषयमें भी हम यह विचार शायद ही करते हैं कि हमें वास्तवमें कितना दुःख है, और जो है अुसमें से हमारे प्रयत्नसे कितना दूर किया जा सकता है। जन्मके समयके दुःखोंका अिस समय हमें स्मरण नहीं है, अितना ही नहीं, हमें अुनकी कल्पना भी नहीं आ सकती। कुछ धर्मग्रंथोंमें गर्भवासके दुःखोंका भयंकर वर्णन दिया गया है। अुसे पढ़कर यदि हम बिना कारण दुःखी होते हों तो वह दुःख हमें छोड़ देना चाहिये। अुनमें वर्णित दुःखोंका सौवां भाग भी सचमुच गर्भवासमें भोगना पड़ता, तो अुनसे बचकर किसी भी प्राणीका जन्म नहीं होता। क्योंकि वैसी दुःखपूर्ण स्थितिमें गर्भकी वृद्धि होना बिलकुल संभव न होता। तब अुस स्थितिके दुःखोंके वर्णनोंको सत्य न समझना ही सत्यके अनुरूप है।

अब हम मृत्युका विचार करें। आज हमें मृत्युका प्रत्यक्ष दुःख अनुभव नहीं होता, परन्तु अुसकी कल्पनासे हमें भय लगता है। जिस पर हमारा प्रेम है और जिसके विषयमें हमें चिन्ता होती है अुस परिवारको और जिसके साथ हम ममतासे अेकरूप हो जाते हैं अुस शरीरको हमें मृत्युके समय छोड़कर जाना पड़ेगा, अुस समय मृत्युकी भयंकर यातना भोगनी पड़ेगी आदि अनेक प्रकारकी कल्पनाओंके कारण हमें भय मालूम होता है। परन्तु मनुष्य विचार करे, प्राणीमात्रकी, मनुष्यमात्रकी, चराचर सृष्टिकी अुत्पत्ति, स्थिति और लयके क्रमको देखे और अुस परसे अिस बातको ध्यानमें ले कि अिस सृष्टिकी प्रत्येक सजीव-निर्जीव वस्तुका कालक्रमसे नाश होना अनिवार्य है, तो अिन सबसे वह अुपयोगी बोध ग्रहण कर सकता है। सृष्टिके जिस नियमके कारण, जिस धर्मके कारण, हमारा जन्म

हुआ है, अुसी नियमके कारण आगे जाकर हमारी मृत्यु भी होगी। हमारे ममत्वका पोषण करनेवाला सृष्टि-नियमका भाग हमे प्रिय लगता है, और बादका भाग दु:खद मालूम होता है। परन्तु सृष्टिका नियम, अुसका क्रम, व्यक्तिके सुख-दु:खके लिअे रुकता या बदलता नही। वह सदाकी भाति अव्याहत चलता ही रहनेवाला है। परन्तु अिस सब परसे विवेकपूर्वक हम अपने मनको स्थिर और दृढ बनाये, तो क्या मृत्यु-सबधी भय और चिन्ताको कुछ अश तक हम घटा नही सकते? परिवारके विषयमे अपनी चिन्ताको अुचित अुपायोसे कुछ मात्रामे दूर नही कर सकते?

कर्तव्यके विषयमे पूरा विचार करके यथाशक्ति अुसके पालनका सतत प्रयत्न करते रहनेके सिवा और कुछ मनुष्यके हाथमे नही है, यह समझकर हम अिसके अनुसार आचरण करे और बाकी सारी चिन्ता छोडना सीख ले, तो अज्ञान और मोहके कारण अपने विषयमे अथवा परिवारके विषयमे मालूम होनेवाला भय और चिन्ता क्या कम नही हो सकती? मृत्युके पश्चात् क्या होता है, यह कोअी नही जानता। परन्तु अूपर कहे अनुसार मनुष्य वर्तमान जीवनमे ही विवेकसे काम ले, तो वह कितने ही दु:खो और भयोसे मुक्त हो जाय। मुक्ति हमे मृत्युके पश्चात् नही प्राप्त करनी है, परन्तु अिसी जीवनमे प्राप्त करनी है। जन्म-मरणसे मुक्ति मिल सकती है या नही, अिसका पता नही। परन्तु अिसमे शका नही कि मनुष्य सही तरीकेसे प्रयत्न करे तो वह बहुतेरे दु:खोसे मुक्त हो सकता है। अिसके लिअे हमे अपने अज्ञान, मोह, आशा-तृष्णा, विषय-लोलुपता, दौर्बल्य आदि जो जो दुर्गुण हमारे दु:खके कारण है अुन्हे दूर करना होगा। अुन्हे दूर किये बिना यदि हम अपनी अिच्छा, वासना, आशा-तृष्णाको बढाते रहे, तो औश्वरका ज्ञान हो जाने पर भी हम मुक्त कैसे हो सकेगे? अिसलिअे मनुष्यको सदा अपने अन्त:करणकी परीक्षा करते रहना चाहिये। अुसे अिन बातोका निरीक्षण करते रहना चाहिये हमारी प्रतिदिनकी जीवन-पद्धतिके कारण हमारा मोह घटता है या बढता है? स्त्री-पुत्र-घर-परिवारके विषयमे हमारी कर्तव्य-निष्ठा बढती है या ममत्व बढता है? प्रतिदिन हम अपने शरीर [illegible] -पोषण करते है, अुसमे दूसरो[illegible] सेवाके लिअे कार्यक्षम और तत्पर [illegible] अुदात्त हेतु है या अपने शरी[illegible] टिकाये रखनेका मोह अथवा [illegible]? जो वास्तवमे जन्म या कहिये दु:खोमे मुक्त होन[illegible] दु:खको बढानेवाली

त्याग करना ही चाहिये। मनुष्य अेक ओर मोह बढ़ाता रहे और दूसरी ओर अुसके साथ मुक्तिकी अिच्छा भी करता रहे, तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह वास्तवमे मुक्तिकी अिच्छा रखता है? प्राप्त शक्तिका मनुष्य कैसा अुपयोग करता है, दैनिक जीवन किस तरह जीता है, अुस परसे अुसकी सच्ची अिच्छाका पता चलता है। यदि हमें नीरोग होना है तो पथ्य-परहेजका पालन करना ही होगा। रोगोंसे बचना हो तो अुसीके अनुसार आहार-विहार रखना चाहिये। अुसी तरह यदि हम दुःखोंसे दूर रहना चाहते है, तो हमे अपनी तृष्णा, वासना आदिको घटाना ही पड़ेगा। अब आप अपने विषयमे विचार कीजिये। आप यदि मुक्ति चाहते है और अुसके लिअे आपको कोअी वासनाका त्याग करने और सयम पालनेकी बात कहे तो आप अुसे स्वीकार करेंगे या नही?

प्र०——परन्तु हम तो गृहस्थाश्रमी है। आपके कथनानुसार हम ससारमे आचरण करे तो हमारा काम कैसे चले?

अु०——आप गृहस्थ है अिसलिअे आपको यह नही समझना चाहिये कि गृहस्थ-जीवन मनुष्यकी अुन्नतिके लिअे बाधक या प्रतिकूल है। आप अपनेको केवल ससारी न समझकर वास्तवमे गृहस्थाश्रमी समझेंगे, तो अुस भावनामें से आपको अपनी अुन्नतिका मार्ग मिलेगा, अितना ही नही, आपको व्यक्तिगत अनुभवसे मालूम होगा कि अुन्नतिका सरल मार्ग गृहस्थाश्रममे ही है। यह सच है कि अन्य आश्रमोकी तरह आज गृहस्थाश्रम भी भ्रष्ट हो गया है, अिसलिअे गृहस्थ-जीवनमे मनुष्यकी अुन्नति नही हो सकती। आज गृहस्थका अर्थ है कामी, क्रोधी, लोभी, लपट, मत्सर-ग्रस्त, दूसरोके सुखको बर्दाश्त न करनेवाला, सदैव स्वार्थ सिद्ध करनेवाला, केवल अपने सुखके लिअे दूसरोसे सम्बन्ध रखनेवाला, जिसका प्रेम स्वार्थी, जिसकी भक्ति स्वार्थी, जिसकी बाहरसे दिखाअी देनेवाली अुदारता भी स्वार्थी है, जो अपनी स्तुति और दूसरोकी निन्दा करनेमे निपुण है, अपनी पत्नी, अपने बाल-बच्चो और स्वयको छोड़कर बाह्य जगत्के सुख-दुःखके विषयमे अुदासीन रहनेवाला है, जिसके हृदयमे माता-पिताके प्रति भक्ति, भाअी-बहनके प्रति प्रेम और मित्रोके प्रति स्नेह नही है; अुनके सम्बन्धमे भी जिसके मनमे कर्तव्यका विचार नही अुठता, ——तब फिर राष्ट्रप्रेम और मानव-प्रेमकी श्रेष्ठ भावनाका तो अुसके हृदयको स्पर्श भी कैसे हो सकता है? ——जिसमे अुदात्तता नामको भी नही होती;

अीश्वरकी भक्तिमे भी जिसका स्वार्थके सिवा अन्य हेतु नही होता, और अिन सब कारणोसे जो अपनी और परिवारकी झझटो, आधि-व्याधियो और विभिन्न प्रकारकी आपत्तियोके कारण सदा अस्वस्थ और चिन्तित रहता है, तथा धन और वैभव प्राप्त होने पर भी जिसे शान्ति और प्रसन्नता नही मिलती। आजके गृहस्थकी अैसी स्थिति है। अैसे गृहस्थ-जीवनमे मानवकी अुन्नतिके लिअे कोअी अवकाश नही है। परन्तु किसी भी धर्ममे गृहस्थकी अैसी व्याख्या दी गअी है? हमारे धर्मकी प्राचीन कालकी पच-महायज्ञकी योजना कितनी अुदात्त है? धर्मकी यह सनातन कालसे चली आअी आज्ञा है कि हमारे सपर्कमे आनेवाले सब लोगोका — पशु-पक्षियो और जीव-जन्तुओ तकका — ऋण प्रतिदिन चुकाकर गृहस्थ और गृहिणीको भोजन करना चाहिये। धर्माचरणके बाद खाया हुआ अन्न साद। अन्न नही, परन्तु अमृत है। अितना पवित्र अन्न और किस मार्गसे मिल सकता है? सबके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करनेके पश्चात् जो मनुष्य स्वय खाता है, अुसके जैसा अुदात्त और पवित्र दूसरा कोअी नही है। अुसका प्रत्येक व्यवहार अुदात्त और व्यापक दृष्टिसे होता है। परिवारके सम्बन्धमे अुसकी भावना विशाल और व्यापक होती है। माता-पिता, भाअी-बहन, पुत्र-पुत्री, मित्र, सगे-सम्बन्धी, आप्तजन, पडोसी, नौकर-चाकर, अनाथ, पगु, दीन, दुर्बल, रोगी, वृद्ध — अितने ही नही परन्तु आश्रित या निराश्रित पशु-पक्षी तक सबका वह अपने परिवारमे समावेश करता है। अिस प्रकारकी व्यापक भावनासे वह परिवार और जगत्के कल्याणके लिअे जीवन व्यतीत करता है। अुसके जैसा अुदार कौन होगा? वह नि स्वार्थ होता है, सत्यधर्मी होता है। अैसे सच्चे गृहस्थाश्रमी आज भी अिस ससारमे है। जगत्मे आज भी जो अुदारता, जो पवित्रता, जो प्रेम, जो भूतदया दिखाअी देती है, सर्वत्र स्वार्थसे भरे हुअे जगत्मे कही-कही जो परमार्थका दर्शन होता है, वह अैसे ही गृहस्थोका प्रताप है। वे ही सच्चे धर्मको जीवित रखते है और ससारमे रहकर ही अपनी अुन्नति साध लेते है। अैसे गृहस्थोको और अुनके आश्रमको कौन दोष दे सकता है?

परन्तु ससारमे रहते हुअे भी जो अपने सगे-सबधियोको सुखी बनानेका ... नही करता, अुनके दु ख दूर करनेकी चिन्ता नही करता, वह ससारका ... जीवन छोडकर राष्ट्रकार्यमे लगा हो तो भी क्या, अीश्वर-भक्त बन

५

अेकान्तवासकी मर्यादा

[अेक सस्थाके मुख्य कार्यकर्ताके साथ हुअी बातचीत – सन् १९२१]

कार्यकर्ता — सार्वजनिक कार्यमे यदि किसीको अपनी अुन्नति होती दिखाअी न दे, तो अुसे वह कार्य छोडकर अेकान्तवासमें कुछ साधना करके अपनी अुन्नति कर लेनी चाहिये या नही ?

अु० — कार्यकर्ताके सार्वजनिक कार्यमे पड़नेका मूल हेतु अपना और दूसरोका कल्याण ही होना चाहिये। अिसीसे वह सार्वजनिक कार्य हाथमे लेता है। तब अैसे अुदात्त हेतुसे स्वीकार किये हुअे कार्यमे वह अपनी अुन्नति भला क्यो नही साध सकता ?

कार्यकर्ता — आप कहते है अुसी प्रकारका हेतु रखकर कार्य हाथमे लेनेके बाद अनुभवसे अुसने जाना कि सार्वजनिक कार्यमे सारा समय बाहरी कार्यमे ही चला जाता है और पहले जिनकी कल्पना भी नही की थी अैसी अनेक वृत्तिया अुस कार्यसे निर्माण होती है। ये वृत्तिया अुसकी अुन्नतिके लिअे बाधक होती है। अैसी स्थितिमे वह क्या करे ?

अु० — जीवनमे जिसका अुद्देश्य केवल चित्तशुद्धि ही होता है, वह किसी भी स्थितिमे अपनी अुन्नति कर लेता है। अितना जरूर है कि अनुकूल परिस्थितिमे अिच्छित अुद्देश्य सिद्ध करना कम कठिन होता है, जब कि प्रतिकूल परिस्थितिमे अुसकी सिद्धि अधिक कठिन होती है। किसी औरके नामसे आपने यह जो प्रश्न पूछा है, अुसे आपका अपना प्रश्न मानकर अुत्तर देना मेरे लिअे अधिक आसान होगा। अिसमे आपको कोअी आपत्ति तो नही है न ?

कार्यकर्ता — मुझे कोअी आपत्ति नही है, क्योकि वह मेरा अपना ही प्रश्न है।

अु० — अपना अिच्छित अुद्देश्य आपको अेकान्तकी अनुकूल परिस्थितिमे सिद्ध कर सकने योग्य लगता हो, तो भी समाजके कार्य करते हुअे आपका मन जितना शुद्ध और स्थिर रहेगा, अुसी परसे आपकी अुन्नतिकी सच्ची

परीक्षा होगी। आज सार्वजनिक कार्य करते हुअे आपके मनमे जो बाधक और अवाञ्छनीय वृत्तिया अुठती हैं, वे अेकान्तवाससे लौटनेके बाद न अुठे तो ही कहा जायगा कि आपको अेकान्तवासमे कुछ लाभ हुआ है। अेकान्तमे चले जाने पर भी अिच्छित स्थिति तुरन्त प्राप्त नही हो जाती। अुसके लिअे मनुष्यको योग्य साधन मिलना चाहिये। अुसमे अुसका चित्त लगना चाहिये। अिस तरह पहले अुसे अेकान्त पचना चाहिये। पचनेके बाद भी अभ्यासमे अुसकी गति होनी चाहिये। फिर, गति होने लगनेके बाद आन्तर या बाह्य, दिव्य या आकर्षक अनुभवोमे अुलझ न जाने या रुक न जाने जितनी मुख्य ध्येयके विषयमें साधककी अुत्कठा और आकर्षण सदा बना रहना चाहिये। अिस प्रकार निष्ठापूर्वक अभ्यास किया जाय तो ही अिच्छित स्थिति प्राप्त हो सकती है। बेशक, अेकान्त अेक विशेष प्रकारके अभ्यासके लिअे आवश्यक है, परन्तु यह अभ्यास आरभ करनेसे पहले मनुष्यको यम-नियमोका पालन करके योग्य पात्रता और ध्येयके विषयमें निष्ठा प्राप्त कर लेनी चाहिये। यह पात्रता न हो तो अेकान्तमे जाकर भी कोअी लाभ न होगा।

कार्यकर्ता — यह पात्रता प्राप्त करनेके लिअे मनुष्यको क्या करना चाहिये?

अु० — यथाशक्ति यम-नियमोका पालन करके सदाचारी बननेका प्रयत्न करना चाहिये। जीवनके व्यवहारको विवेकपूर्वक धर्ममार्ग पर चलाते रहना चाहिये। अिससे मनुष्यमें यह पात्रता आती है।

कार्यकर्ता — यहा ‘धर्म’ शब्दका क्या अर्थ किया जाय? और जीवन-व्यवहारको धर्ममार्ग पर चलानेसे आपका क्या मतलब है?

अु० — समाजके लिअे अधिकसे अधिक अुपयोगी, हितप्रद और आवश्यक जो विद्या, कला, ज्ञान, गुण हममे हो, अुनके द्वारा समाज-हितकी दृष्टिसे जीवन-व्यवहार चलाया जाय। अुस विद्या, कला, ज्ञान और गुणका अुपयोग ही स्वकर्म है। अुदात्त बुद्धिसे स्वकर्म करते रहना ही धर्म-पालन है। अिस धर्ममे निहित व्यापकताका महत्त्व समझकर यदि मनुष्य धर्मयुक्त जीवन व्यतीत करे तो वह अपनी अुन्नति साध सकता है।

कार्यकर्ता — क्या अिस प्रकारके केवल धर्माचरणसे मनुष्यकी सर्वांगीण अुन्नति हो सकती है?

अु० — मनुष्य, परिवार, समाज, राष्ट्र, मानव-जाति — अिन सबके कल्याणकी दृष्टिसे जो आचरण किया जाय, अुसके द्वारा मनुष्यकी अुन्नति होनेमे रुकावट कहा हो सकती है?

कार्यकर्ता — आप कहते है या कल्पना करते है, वैसे धर्ममे सबके लिअे समान नियम और आचार निश्चित किये गये होगे। परन्तु प्रत्येक व्यक्तिकी प्रवृत्ति, सस्कार, स्वभाव, ज्ञान, गुण, कर्तृत्व आदिमे स्वभावत अन्तर होता है। अैसी स्थितिमे प्रत्येक मनुष्यकी अुन्नतिका क्रम और साधन सदा अेकसे कैसे हो सकते है?

अु० — सबका स्थूल क्रम अेकसा नही हो सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य — अर्थात् अुन अुन कर्मोके लिअे आवश्यक गुणवाले मनुष्य अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार अलग अलग कर्मो द्वारा अपनी अुन्नति कर सकते है। प्रत्येक मनुष्यकी प्रवृत्ति भिन्न हो तो भी विचारसे यह दिखाअी देगा कि अुस प्रवृत्तिके पीछे गुणोका अनुशीलन करनेके विषयमे सब अेकसे ही है। गुणोके अनुशीलन द्वारा ही सबको अपनी अुन्नति करनी पडती है। अिस तरह विचार करे तो लगता है कि अुन्नतिका सूक्ष्म क्रम सबका अेकसा ही होगा।

कार्यकर्ता — परन्तु अिस तरह अपने-अपने कर्म करते रहनेसे, अर्थात् केवल स्वधर्माचरणसे ही, सब प्रकारकी अुन्नति कैसे हो सकती है? सुतार केवल सुतारी-काम करता रहे तो अुससे वह अपनी अुन्नति कैसे कर सकता है? सुतारी-कामके सिवा और भी कुछ अुसे अपनी अुन्नतिके लिअे करना चाहिये या नही?

अु० — सुतारी-काम समाजके लिअे आवश्यक है, अैसा मानकर सुतार अुसे करता रहे। अुससे समाजको किसी प्रकारका नुकसान न पहुचे और सदा लाभ होता रहे, तो माना जायगा कि अुस काममे अपने निर्वाहके साथ ही अुसने धर्म-पालन भी किया। अुसमे भी अपनी बुद्धिका विकास करके वह अपनी कुशलता बढ़ावे, अपने औजारोमे सुधार करे, अपनी कला, अपना ज्ञान और अपने गुण अधिक लोकोपयोगी कैसे बन सकते है तथा लोगोकी कठिनाअिया कैसे दूर हो सकती है अिसका विचार करे, घर बनाने और वस्तुअे तैयार करनेमे लोगोके स्वास्थ्य और सुरक्षितताका विचार करे तथा अपने काममे अमीर-गरीबका भेद न रखे, तो अपने विकासके साथ वह समाजके लिअे कितना अुपयोगी हो सकता है? ये बाते सिद्ध

करनेमें अुसे जितनी ही भौतिक वस्तुओंका और अुनके गुणधर्मोंका शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त होता रहेगा। अिस दृष्टिसे विचार किया जाय तो अुसके ज्ञान और अुपयोगिताका क्षेत्र कितना ही विस्तृत हो सकता है। केवल अपने जीवन-निर्वाहका साधन मानकर किये जानेवाले अुद्योगोंमें अपने गुणोंकी अुपयोगिता बढ़ाने और साथ ही अपनी अुन्नति करनेका कितना बडा अवकाश है, अिसकी कल्पना जरा होनी चाहिये। अिसलिअे निर्वाहके साधनके रूपमें स्वकर्मकी शिक्षाके साथ ही संसारका कल्याण करनेवाले मार्गमें अुपयोगी होते रहनेका स्वधर्म भी अुसकी समझमें आना चाहिये। जो बात सुतारी-कामके बारेमें कही वही समाजोपयोगी प्रत्येक विद्या, ज्ञान, कला और धंधेके विषयमें हमें समझनी चाहिये, और जितना सब समझकर भी यह चीज अुसके ध्यानमें आनी चाहिये कि अितनेमें ही स्वधर्म पूरा नहीं हो जाता।

कार्यकर्ता — अिस तरह स्वकर्म करनेके बाद दूसरा स्वधर्म-पालन और क्या रह जाता है?

अु० — सद्गुणोंके अनुशीलनका — सबके विषयमें कर्तव्य-पालनका — भी स्वधर्ममें ही समावेश होता है। बाह्य कर्म समाजकी परिस्थितियोंके अनुसार बदलते रहते हैं। समाजको युद्धकी आवश्यकता हो तो व्यक्तिको भी अुसमें भाग लेना पड़ता है। विशिष्ट समयोंमें क्रान्तियां होती हैं। श्रीकृष्णके समयमें क्रान्ति हुअी थी। गौतम बुद्धके समयमें भी हुअी थी। आजका समय भी क्रान्तिका ही है। किस बाह्य कर्म द्वारा दूसरोंके प्रति कर्तव्य-पालन हो सकता है, यह हर अवसर पर पहलेसे ही निश्चित रूपसे तय करना संभव नहीं है। प्रत्येक अवसर पर समाज-कल्याणकी दृष्टिसे कर्मके औचित्य-अनौचित्यका विचार करना चाहिये। और अुसके बाद समाज और व्यक्तिके प्रति कर्तव्यका पालन तथा अुसके लिअे आवश्यक गुणोंका अनुशीलन करना चाहिये। अिन सब बातोंका समावेश स्वधर्ममें ही होता है।

कार्यकर्ता — अिस प्रकार स्वधर्मका खयाल आने तथा अुसे निश्चित करनेके लिअे कौन-कौनसी बातें आवश्यक हैं?

अु० — अिसके लिअे विवेक, दृढ़ता, सत्संग, सद्वाचन, मनन, निरीक्षण आदिकी आवश्यकता है। अिनमें भी कुल मिलाकर विवेक और दृढ़ताके गुणोंका अुन्नतिके लिअे बहुत अधिक महत्त्व है। विवेक प्रत्येक मनुष्यमें कम-ज्यादा

मात्रामें होता ही है। यह अच्छा है, वह बुरा है — यह समझनेकी शक्ति प्रत्येकमें होती है। मनुष्य जैसे-जैसे अिस शक्तिको जाग्रत करता जाता है, वैसे-वैसे यह बढती जाती है, और अिससे असे बड़ा लाभ होता है। विवेकसे मनुष्य अपने धर्मको समझ सकता है और दृढतासे अुसका पालन कर सकता है। मनुष्यमें दृढता न हो तो धर्मको समझने पर भी वह अुसका पालन नहीं कर सकेगा। कसौटीके समय दृढताके विना अुसका काम ही नहीं चल सकेगा।

कार्यकर्ता — अुन्नतिके लिअे क्या मनुष्यको कसौटीके अवसर खोजने या निर्माण करने चाहिये? कठिन अवसरों पर भी धर्म-पालन हो सकता है, अिसका विश्वास अैसे अवसरोंमें से गुजरे सिवा अुसे कैसे हो सकता है? और अिसके विना अुसमें आत्म-विश्वास कैसे पैदा हो सकता है?

अु० — मनुष्य सदैव सावधान रहकर और विवेकपूर्वक काम करे, तो कसौटी अथवा परीक्षाके अवसर खुद होकर खोजने या पैदा करनेकी आवश्यकता न रहे। हमारा आजका जीवन सच्चे धर्मसे अितना दूर पड गया है कि अुसे सच्चे धर्ममार्ग पर लानेके लिअे हमें अपनी विवेक-शक्ति और दृढताका सतत अुपयोग करते रहना होगा। केवल अिसीलिअे हमें अपने सद्गुणोंको चरम सीमा तक पहुंचाते रहनेकी जरूरत है। अिसके बिना हमारी अपनी अुन्नति नहीं हो सकती। परिवार या बाहरी समाजमें से किसीके भी साथ आनेवाले अपने सबंधोंमें हमारी ओरसे प्रेम, विश्वास, पावित्र्य, प्रामाणिकता, सरलता आदि गुण प्रकट नहीं होते, तब तक धर्म-पालन करनेके लिअे अलग अवसर खोजने या जान-बूझकर पैदा करनेकी क्या जरूरत है? हमारे अपने ही चित्तमें परस्पर विरोधी वृत्तियोंका क्या कम झगडा चलता है? वह झगडा मिटे और चित्त शुद्ध हो — स्थिर हो, तो धर्म-पालन आसानीसे हो सकता है, फिर भले कोअी मनुष्य परिवारके साथ रहता हो या अुससे अधिक व्यापक क्षेत्रमें कार्य करता हो। अपनी अुन्नतिके लिअे परिवारमें रहते हुअे जो गुण हमारे लिअे जरूरी है, वे ही अधिक व्यापक क्षेत्रमें भी जरूरी हैं। कोअी भेद होगा भी तो बुद्धि-सामर्थ्यमें होगा, गुणोंमें नहीं। किसी भी क्षेत्रमें गुण-विकासकी समान आवश्यकता है। परिवारका काम करते हुअे यदि हमारे मनमें मलिनता — स्वार्थ होगा, तो सार्वजनिक कार्यमें भी वही दोष बाधक होगा। अिसलिअे मनुष्य चाहे जिस क्षेत्रमें काम करे, परन्तु अपनी अशुद्धिको कायम रखकर वह अुन्नति नहीं साध सकता। धर्मकी कसौटी बाह्य परिणाम

परसे निश्चित नही होती, बल्कि अिस परसे निश्चित होती है कि किसी भी अवसर पर हमे अपने सद्‌गुणोका कितना बल काममें लेना पडा और अुन्नतिकी दृष्टिमे आखिर हमने क्या सिद्ध किया। अिस बातकी आज कल्पना भी नही की जा सकती कि मनुष्यको अपना अज्ञान, मोह और स्वार्थ नष्ट करनेके लिअे कितना प्रयत्न करना पडेगा और कितना कष्ट सहना होगा।

कार्यकर्ता — अुन्नतिके लिअे मनुष्यको बुद्धि-सामर्थ्यकी कितनी आवश्यकता है ?

अु० — जीवनमे सदैव अुपयोगी सिद्ध होनेवाला विवेक बुद्धि-सामर्थ्यके अभावमे चित्तमे टिक नही सकेगा। अिसलिअे विवेककी आवश्यकताके साथ बुद्धि-सामर्थ्यकी आवश्यकता सिद्ध हो ही जाती है। अिसके सिवा, परिवार, जाति, देश अिन सबके प्रति मेरा क्या कर्तव्य है, यह जानने और अुसे पूरा करनेके लिअे आवश्यक बुद्धिबल प्रत्येक मनुष्यमे होना चाहिये। अिसी तरह अपने जीवन-व्यवसायके लिअे आवश्यक कल्पना-शक्ति, योजना-बल, कुशलता आदि बौद्धिक गुणोकी भी मनुष्यको जरूरत होती है। अपने पर या जिस समाजमे हम रहते है अुस पर आनेवाले सकटोमे से मार्ग निकालनेकी समय-सूचकता, तारतम्य आदि गुण भी मनुष्यमे होने चाहिये। साराश यह कि धर्मका पालन करते हुअे जीने और अुन्नत बननेके लिअे मनुष्यको प्रत्यक्ष जीवनमे अुपयोगी हो सकनेवाले बुद्धि-सामर्थ्यकी आवश्यकता होती है। शकराचार्य और विद्यारण्य अथवा न्यूटन और हेकलके जैसे बौद्धिक सामर्थ्यकी प्रत्येक मनुष्यको आवश्यकता नही है।

कार्यकर्ता — अभी तक आपने बताया वैसे स्वधर्म-पालन, अुसीमें सद्‌गुणोका अनुशीलन, चित्तकी शुद्धि, विवेक और बुद्धि-सामर्थ्य आदिका महत्त्व समझकर मनुष्य चले, तो आप मानते है कि अुन्नतिके लिअे अुसे अेकान्तमे जानेकी आवश्यकता नही।

अु० — हा, लगभग अैसा ही है। मै यह नही कहता कि अेकान्तवासमें कभी भी जानेकी जरूरत नही है। हमे अपने मनकी ही अुन्नति करनी है। और मनकी अुन्नति धर्म-पालन और सद्‌गुणोके अनुशीलनसे ही होनी चाहिये। परन्तु अिसके लिअे आवश्यक चित्त-सामर्थ्य जो मनुष्य अपने प्रतिदिनके जीवन-क्रममे प्राप्त नही कर सकता अथवा बढा नही सकता, अुसे कुछ समय तक अेकान्तमे चित्तका अैसा अभ्यास करके यह सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये।

अैसे अभ्यासके लिअे कुछ समय तक एकान्तकी आवश्यकता होनेके कारण अेकान्तवासके बिना यह अभ्यास नही हो सकता। परन्तु यह बात अुसे अभ्यास-कालमे भी भूलनी नही चाहिये कि अिस तरह प्राप्त किये हुअे सामर्थ्यका अुपयोग आगे धर्म-पालनमे अर्थात् धर्मके आचरणमे ही करना है, और अेकान्तवास साध्य नही परन्तु साधन है। अिसके सिवा, यह भी अुसके ध्यानमे रहना चाहिये कि अभ्यासमे लगनेके पूर्व, जैसा कि अूपर बताया गया है, थोडी विशिष्ट सात्त्विकता प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

कार्यकर्ता — अीश्वर-दर्शन, आत्म-साक्षात्कार और मोक्षके ध्येय सिद्ध करनेके लिअे आप अेकान्तवासकी आवश्यकता मानते है या नही?

अु० — मेरे मतानुसार चित्तशुद्धि और सद्गुणोके अुत्कर्ष द्वारा मानवता सिद्ध करना ही जीवनका ध्येय है। मानवता धर्म-पालनसे सिद्ध हो सकती है। धर्मका पालन करनेके लिअे चित्तशुद्धिकी आवश्यकता है। और चित्त-शुद्धिके लिअे चित्त-सामर्थ्य चाहिये। अेक खास प्रकारके अभ्याससे ही वह सामर्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। अितनेके लिअे किसी मनुष्यको कुछ समय तक अेकान्त-सेवनकी आवश्यकता हो सकती है। धर्म-पालन और अुन्नतिके लिअे अीश्वर-निष्ठाकी आवश्यकता है, अीश्वर-दर्शनकी नही। क्योकि अीश्वर-दर्शन, आत्म-साक्षात्कार, मोक्ष आदिके विषयमे कितनी ही भ्रामक कल्पनाये प्रचलित है। ये सब कल्पनाये छोड दे तो अीश्वर और आत्माके विषयमे विचार करने या ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे तथा वासना-आशातृष्णासे मुक्ति पानेके लिअे विशेष अेकान्तकी आवश्यकता नही है। सत्सग, विवेक आदि द्वारा मनुष्य अुस विषयमे जीवनभरके लिअे नि.शकता प्राप्त कर सकता है। अिन सब बातोका मानवतामे ही समावेश होता है।

सत्ताभाव

प्र० — दूसरोंको अपने अधीन रखकर अुनकी अुन्नति करनेके लिअे कोओ मनुष्य अुनसे प्रेम और मित्रता रखे, तो अुससे दोनों पक्षोंकी अुन्नति होगी या नहीं? दूसरेके समर्पण-भावके कारण अपनेमें सत्ताका भाव और अहंकार अुत्पन्न होगा, अैसे भयसे कोओ दूसरेके विषयमें अपनी जिम्मेदारीसे बचनेकी अिच्छा रखे तो अुसमें कोओ दोष है? अिसके सिवा, लोग समझते हैं अुतना प्रेम या मैत्रीभाव किसीमें न हो तो भी अुसे दूसरोंकी ओरसे मिलनेवाला सद्भाव स्वीकार करना चाहिये या नहीं?

सच्चे प्रेम और मैत्रीमें दूसरोंको अधीन रखनेकी अिच्छाका अभाव

अु० — दूसरोंको अपने अधीन रखनेकी अिच्छा सत्ताभावका मुख्य लक्षण है। अुस हेतुसे कोओ भय अथवा लालच दिखावे, दबाव डाले या कोओ प्रेम, मैत्री आदि द्वारा दूसरेको अपने वश करनेका प्रयत्न करे, जब तक अिन दोनों प्रकारोंमें दूसरेको अपने अधीन रखने या वश करनेका अुद्देश्य है, तब तक दोनोंमें सत्ताका भाव है। और जांच करनेसे पता चलेगा कि अिसीके लिअे दोनोंके प्रयत्न चालू हैं। अधीन रखनेमें भी दोनोंके अन्य क्या हेतु हैं, अिसकी जांच करनेसे संभवत मालूम होगा कि किसीका हेतु स्वार्थसिद्धिका है तो किसीका अुसके द्वारा दूसरोंका (स्व-अधीन व्यक्तियोंका भी) कल्याण करनेका हेतु है। अैसा लगता है कि स्वर्गकी लालसा और नरकका भय भी मानव-कल्याणकी अिच्छासे ही अुत्पन्न हुअे होंगे। भय और लालच हो या प्रेम और मैत्री हो, यदि हमारा प्रयत्न अपना स्वार्थ साधनेका ही हो तो मानव-जीवनकी दृष्टिसे अुसे स्वार्थका ही अेक प्रकार मानना चाहिये। अूपरसे देखने पर किसीको यह लगेगा कि भयकी अपेक्षा प्रेमसे दूसरोंको अपने अधीन रखनेके प्रयत्नमें कोओ दोष नहीं है। परन्तु थोड़ा गहरा विचार करनेसे समझमें आ जायगा कि जब किसीको अपने अधीन रखनेके हेतुसे प्रेम, मैत्री आदि भाव दिखाये जाते हैं, तब अुनमें सत्यकी बहुत कम संभावना होती है। किसी व्यक्तिकी सात्त्विकताके कारण तथा प्रेम, मैत्री आदि सद्भावोंके कारण

लोग अुसके प्रति आकर्षित होते हो, अुस पर श्रद्धा रखते हो या अुसको सर्वार्पण करते हो, तो वह अुसके सद्गुणोका तथा लोगोकी भावुकता, नम्रता, श्रद्धालुता आदि गुणोका — दोनो पक्षोके अनेक गुणोका — सयुक्त परिणाम है। अैसे अवसर पर अुस व्यक्तिका कर्तव्य यह है कि वह अिस परिणामका — लोगोकी श्रद्धा, भावुकता आदिका — अुपयोग अुनका कल्याण करनेमे तथा अपने प्रेम, मैत्री आदि भावोकी शुद्धि-वृद्धि करनेमे करे। लोगोकी श्रद्धा और सर्वार्पणका अुपयोग स्वभावत अुनके कल्याणके लिअे होता रहना चाहिये। परन्तु अन्य किसी हेतुसे लोगोको अपने अधीन रखनेके लिअे सात्त्विकता, प्रेम, मैत्री आदि भाव दिखाये जाय, तो अुनमे शुद्धता, निर्दोषता और स्वाभाविकताका रहना सभव नही है। जब तक वह व्यक्ति समझता है कि दूसरेका स्वार्पण अपनी सद्भावनाका स्वाभाविक बाह्य परिणाम है, तब तक अुसमे शुद्धता और स्वाभाविकता रहती है। परन्तु जब यह परिणाम अुत्पन्न करनेके लिअे मनुष्य प्रेम, मैत्री आदि भाव दिखाने लगता है, तब अुनमे से स्वाभाविकता चली जाती है और कृत्रिमता, दभ आदि दोष अुत्पन्न होनेकी पूरी सभावना रहती है। जब लोगोको अपने अधीन रखनेके लिअे प्रेम, मैत्री आदि दिखानेकी रीति अेक नीतिके रूपमे स्वीकार की जाती है, तब युक्तिके रूपमे ही अुसका अुपयोग होने लगता है। दूसरोको अपने अधीन रखनेका ही मुख्य अुद्देश्य — हेतु निश्चित हो जानेके बाद, यह चीज यदि कृत्रिमतासे प्राप्त हो सकती हो, तो अुसके लिअे प्रेमभाव बढानेकी आवश्यकता नही महसूस होती। भक्ति, वैराग्य आदिसे लोगोमे प्रतिष्ठा मिलनेके कारण जिस तरह अुस मार्गमे दभका साम्राज्य फैला दिखाअी देता है, और अिस कारण अुसमे से सच्ची भक्तिको खोज निकालना कठिन हो गया है, अुसी तरह प्रेम, मैत्री आदिके विषयमे भी होता रहता है। अिसलिअे जहा प्रेम, मैत्री आदिका हेतु दूसरोको अपने अधीन रखनेका हो, वहा अुनकी सत्यताके विषयमे शका अुठना स्वाभाविक है।

परन्तु चित्तकी शुद्ध अवस्थामे जो प्रेम, मैत्री आदि भाव दिखाअी देते है, अुनमे दूसरोको अपने वशमे करनेकी थोडी भी अिच्छा नही रहती। अुन भावोके नैसर्गिक परिणामस्वरूप लोग सद्भावनावाले पुरुषकी ओर आकर्षित होते है। वह किसीको हेतुपूर्वक अपनी ओर खीचना नही चाहता। अपनी सद्भावनाओकी शुद्धि-वृद्धि करते रहना ही जीवनमे अुसका मुख्य हेतु

होता है। यह भी सभव है कि अुसकी सद्भावनाओका नैसर्गिक परिणाम जगत्मे अुत्पन्न होते हुअे भी अुसके कार्य-कारणभावको वह न जानता हो। अितना अिस सबधमे अुसका अज्ञान माना जायगा। अीश्वर-भक्त मानता है कि जगत्मे जो कुछ भी होता है, वह सब अीश्वरकी अिच्छा या आज्ञासे ही होता है। अिसलिअे अपने भक्ति, प्रेम, अुदारता, वैराग्य आदि गुणोके कारण लोगोसे प्राप्त होनेवाले मान, विश्वास, स्वापण-भाव आदिको वह अीश्वरकी कृपा मानता है और अुस कृपाका वह पात्र नही है अैसा समझकर सदा निरहकार बने रहनेका प्रयत्न करता है। भक्ति-भावनाकी प्रबलताके कारण दुनियामें होनेवाली विशिष्ट घटनाओका भी कार्य-कारणभाव खोजनेका विचार अुसके मनमे कभी नही अुठता। जगत्की छोटी-बडी, भव्य, व्यापक सारी घटनाओका कार्य-कारणभाव यथार्थ रूपमे खोजना असभव लगनेके कारण अुन सबके लिअे 'परमात्माकी अिच्छा—कृपा' का अेक ही कारण बताकर प्रत्येक अवसर पर अुत्पन्न होनेवाली जिज्ञासा-वृत्तिको बुद्धिमे शान्त करनेकी झझटसे अीश्वर-भक्त बच जाते हैं और अीश्वरकी श्रद्धाके आनन्दमें लीन रहनेका प्रयत्न करते हैं। यह अुन्हे अच्छा लगता है। फिर भी मानवके मनमे बसी हुअी ज्ञानवृत्ति अिस तरह सदा तृप्त नही हो सकती। कोअी प्रेमी व्यक्ति अपने प्रेम, मैत्री आदि भावनाओके बाह्य परिणाम न जानता हो, तो अुससे अुसके जीवनमे कोअी काम रुकता नही। परन्तु जो मनुष्य विवेकी, ज्ञानी तथा सर्व मानव-सद्गुणोसे युक्त होना चाहता है, अुसे जीवन-सबधी किसी भी महत्त्वके विषयमें अज्ञान नही रहना चाहिये। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वस्तुका कार्य-कारणभाव समझ लेनेके लिअे अुसे सदैव तत्पर रहना चाहिये। अिस विषयमे दुर्लक्ष, अुदासीनता, अज्ञान आदि दोष अुसमे नही होने चाहिये।

प्रेम-मैत्रीसे अुत्पन्न जिम्मेदारी पूरी करनेकी वृत्ति

विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह दूसरोको अपने अधीन रखनेकी अिच्छा न रखे और अपने प्रति अुनके विश्वास और स्वार्पण-भावका अुपयोग अुन्हीके कल्याणके लिअे करता रहे। यह अुसका स्वाभाविक कर्तव्य है। अिस कर्तव्यको टालनेका कोअी कारण नही है। श्रद्धालु तथा अर्पणशील मनुष्य भी कुछ बातोमे पगु और पराधीन रहता है। अुसमें पूर्ण आत्म-विश्वास नही होता, अिसी कारण वह किसीका आश्रय

खोजता है, किसीकी शरणमे जाना चाहता है। विवेकी पुरुषको अुसकी पगुता और पराधीनता दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये; अुसे अैसा मार्ग बताना चाहिये जिससे अुसमे आत्म-विश्वास अुत्पन्न हो। अुसे श्रद्धालु मनुष्यको विवेकी बनाकर अैसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे वह अनेक सद्गुणोंसे युक्त हो जाय, और यह समझाना चाहिये कि जीवन-सिद्धि प्राप्त करनेके लिअे किसीकी सपूर्ण शरण लेनेकी, किसीके आश्रय पर सदा अवलबित रहनेकी अथवा किसीकी कृपा-याचना करनेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। अुस सिद्धिके लिअे आवश्यकता है शुद्ध विवेककी तथा मानवीय सद्गुणोंके अुत्कर्षकी। अिस मार्गमे पगुता, दीनता, पराधीनता रखनेसे काम नही चलेगा। "आपके ही सच्चे प्रयत्नसे जीवनमे आपको यश मिलेगा। अुसके लिअे किसीको भी स्वार्पण करनेकी जरूरत नही। पराधीन न बनकर, किसीको भी स्वार्पण न करके यदि आप धैर्य, विवेक और दृढतासे आचरण करेगे तो आप जीवनकी सिद्धि प्राप्त कर सकेगे। मनुष्यकी श्रद्धा और स्वार्पण-भाव अुसकी अुन्नतिकी परिसीमा नही है, बल्कि सद्गुण-सम्पन्नता और अुससे प्राप्त होनेवाली स्वाधीन तथा निरालब स्थिति ही अुन्नतिकी परिसीमा है।"—यह बात विवेकी पुरुषको अुसे बार-बार समझानी चाहिये। जिस प्रकार कोअी होशियार और रोगीके स्वास्थ्यकी चिन्ता रखनेवाला परोपकारी डॉक्टर अपने पास आनेवाले रोगीको अुसके रोग, रोगके कारणो और अुसके अुपचार आदि सब बातोका ज्ञान देकर अुसे रोगमुक्त और स्वतत्र बनाकर ही अुससे अलग होता है, अुसे टालकर जिम्मेदारीसे छूटनेकी अिच्छा नही रखता, अुसी प्रकार सात्त्विक और विवेकी मनुष्यको श्रद्धावान व्यक्तिके सम्बन्धमे आचरण करना चाहिये।

दूसरेका हित सदा अपने हाथमे रखना, अथवा अपने हाथमे है अैसा दिखाते रहकर दूसरेका अपने प्रति रहा विश्वास और अवलबन कायम रखनेका प्रयत्न करना अशुद्ध और अधम वृत्ति है। अुसी प्रकार न्यायपूर्वक अपने पर आअी हुअी जिम्मेदारीको टालते रहकर, अुचित समय पर अुसे सहारा न देनेमे तथा अुसे सही मार्ग पर न लगानेमे भी दोष है। अिसलिअे सब पहलुओंसे विचार करने पर अिस विषयमे यही ठीक लगता है कि सात्त्विक तथा विवेकी मनुष्यको, अपने अधीन रखनेके हेतुसे, किसीके प्रति प्रेम या मैत्रीभाव दिखानेका प्रयत्न नही करना चाहिये, परन्तु अपने भीतरके

स्वाभाविक सद्गुणोंके कारण दूसरोंके मनमें जो आदर और विश्वास अुत्पन्न हो, अुसके फलस्वरूप अिच्छा न होने पर भी जो अुचित दायित्व आ जाय, अुसे दूसरा कोअी पूरा न कर सके और अपनेमें अुसे पूरा करनेकी योग्यता हो, तो अुस दायित्वको पूरा करके ही अलग होना चाहिये। यही अैसी स्थितिमें अुचित माना जायगा। दूसरेकी पशुता हमें असह्य मालूम होती हो और अुस पशुताको दूर करनेकी योग्यता तथा आत्म-विश्वास हममें हो तो अुसे दूर करना ही अुस पशुताका और हमारी असह्यताकी भावनाका सच्चा अिलाज है। अुस समय अुस पशुताका अिलाज करना ही विवेकी मनुष्यका कर्तव्य हो जाता है। स्वयं हमारी वैसी दशा होती और अुस समय दूसरोंने हमारे प्रति अुदासीनता, अुपेक्षा या अलिप्तता दिखाअी होती तो हमें कैसा लगता, अिसका विचार करके सात्त्विक और विवेकी पुरुषको अपना कर्तव्य निश्चित करना चाहिये।

किसी भी पुरुषमें असाधारण प्रेम और मैत्रीका भाव दिखाअी देने पर लोग स्वभावतः अुसके प्रति आकर्षित होते ही हैं। अुस स्थितिमें वे अुसका आश्रय लेनेका प्रयत्न करते हैं और स्वार्पण भी करते हैं। अैसे समय लोगोंको अपने अधीन रखनेका हेतु न हो तो भी अुनके सम्बन्धमें अुचित दायित्व स्वीकार करना अुसका स्वाभाविक कर्तव्य हो जाता है। अैसी स्थितिमें मुक्त रहनेकी अिच्छामें दायित्वको टालना अुसका दोष माना जायगा। सच पूछा जाय तो प्रेम और मैत्रीभावका होना और फिर भी मुक्त रहनेकी अिच्छामें अपने पर आये हुअे दायित्वको टालनेकी वृत्ति रखना — ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। क्योंकि प्रेम, मैत्री आदि भाव जिसमें दिखाअी देते हैं, वह दूसरोंके खातिर यदि थोड़ा-बहुत कष्ट सदा सहता न हो, तो अुसमें अुन भावोंका दर्शन होना संभव नहीं है। और यदि वह दूसरोंके लिअे सदा थोड़ा-बहुत कष्ट सहन करता हो, तो अुसका यह अर्थ है कि वह अिस विषयमें अपना दायित्व समझता है और यथाशक्ति अुसे पूरा करता है। कर्मके बिना अुसके प्रेम, मैत्री आदि भाव प्रकट हो ही नहीं सकते। अिसलिअे यदि दूसरोंको अिन भावोंका दर्शन अुसमें होता हो, तो समझना चाहिये कि वह दूसरोंके लिअे सदा कुछ न कुछ करता ही होगा। अैसी स्थितिमें यह माननेमें कुछ भूल होनी चाहिये कि अुसका मुक्त रहनेका प्रयत्न चालू है। कदाचित् यह हो सकता है कि अुस पर विश्वास रखनेवाले लोगोंकी सारी आशाअें

पूर्ण करनेकी शक्ति अुसमें न हो, अिसलिअे अुन्हें पूर्ण करनेका भार वह अपने सिर न लेता हो। यह सच हो तो अुसका अैसा करना ठीक ही है। शक्तिसे बाहर काम सिर पर न लेनेमें ही विवेक है और दोनोंका कल्याण है। विश्वास रखनेवाला व्यक्ति अपनी योग्यता-अयोग्यताको और दूसरेकी परिस्थितिको न समझनेके कारण अुससे विवेकहीन आशा रखे, तो विवेकी पुरुष अुसकी अैसी आशा पूरी नहीं कर सकता। प्रेम, मैत्री आदि भावोंके होनेमें चाहे जितनी कठिन जिम्मेदारी पूरी करनेकी शक्ति और योग्यता थोड़े ही आ सकती है? अिसलिअे यदि कोअी अपनी या दूसरेकी किसी भी प्रकारकी अयोग्यताके कारण शक्तिके बाहर दायित्व न अुठाता हो, तो कहना चाहिये कि वह अुसका दोष नहीं बल्कि सद्‌गुण ही है। शक्तिके अनुसार अुसे अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये। अुसी परसे अुसके भीतरके प्रेम, मैत्री आदि भाव प्रकट होते रहने चाहिये। और यदि कोअी अुचित कर्म किये बिना ही अुसमें ये भाव हैं अैसा हमें लगे, तो समझना चाहिये कि वह सब भावनाके मीठे शब्दोंका ही अुभार है। अैसी स्थितिमें संभव है वह प्रत्येक दायित्वको टालने और अुससे मुक्त रहनेका प्रयत्न करे। परन्तु अैसी स्थितिमें प्रेम, मैत्री आदि भावोंके अस्तित्वकी बात ही गलत होनेके कारण अुसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। अतः दोनों दृष्टियोंसे दोनों ओरकी योग्य परिस्थितिमें विवेकी और सद्‌गुणी पुरुष अुचित दायित्वसे बचकर मुक्त रहनेकी अिच्छा करे यह संभव नहीं मालूम होता।

निरहंकार भावसे कर्म करते रहनेकी भावना

अिस संबंधमें थोड़ा और स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, आर्थिक या कौटुम्बिक किसी भी कठिनाअीके कारण, प्रतिकूल परिस्थितियोंके कारण अथवा किसी तरहकी अयोग्यताके कारण कोअी पुरुष दायित्व न अुठाता हो और निरर्थक बंधनमें पड़नेसे बचना चाहता हो, तो अुसका अैसा करना विवेकयुक्त ही माना जायगा। किसी पुरुषका कार्यक्षेत्र बिलकुल भिन्न होनेके कारण तथा पहलेके दायित्वोंका बहुत भार होनेके कारण दूसरोंके अपेक्षित नये दायित्व वह अुठाना न चाहे तो यह ठीक ही है। दायित्व अुठानेके कारण प्राप्त होनेवाले महत्त्वकी वजहसे अहंकार बढ़ेगा, अैसे भयसे अथवा अुपाधि बढ़नेकी आशंकासे कोअी पुरुष दायित्वको टालता हो तो वह ठीक नहीं है। विवेकी मनुष्यको निर-

सुकार भावने और अुदात्त हेतुसे सदा कर्म करते रहना चाहिये। कोअी कर्म बाहरसे छोटा हो या बड़ा, परन्तु अुचित, आवश्यक और धर्म्य कर्म करते-करते अुसे अपना जीवन बिताना चाहिये। अपना आश्रय लेनेकी अिच्छा रखनेवालेमें जो अतिशयता हो, अुसकी शरणागतता, नम्रता, भावना-शीलता आदिमें जो अतिरेक हो, अुसकी जीवन-सिद्धिके मार्गमें आवश्यकता नहीं है, अुलटे वैसी अतिशयतायें अुसके मार्गमें बाधक होंगी — यह बात विवेकी पुरुष अुसे समझा दे, तो समर्पण करनेवाले और अुसे स्वीकार करनेवाले दोनोंका जितना ही मानसिक बोझ कम हो जायगा और अिसके फलस्वरूप दोनोंके कर्म व्यवस्थित, निर्विघ्न और स्वतन्त्रतापूर्वक चल सकेंगे। फिर न तो अत्यन्त शरणागत-भाव रखनेका कारण रहेगा और न बन्धन या अुपाधिके भयसे दायित्वको टालते रहनेका कोअी कारण रहेगा।

अपनेमें योग्यता न होते हुअे भी स्वार्थपूर्ण आकांक्षासे दूसरोंके अुद्धार-का दायित्व अुठाना या योग्यता होते हुअे भी दूसरेको अुचित आश्रय न देकर अपनी अलिप्तता बनाये रखनेके हेतुसे दायित्वको टालना — अिन दोनोंमें पहली वृत्ति अधिक भयंकर है और दूसरीमें अुचित समय पर अपने कर्तव्यको न पहचानने और टालनेका दोष है।

अिस विषयका सब ओरसे विचार करने पर मुझे असा लगता है। फिर भी दायित्व न अुठाने तथा मुक्त रहनेकी अिच्छा रखनेका सच्चा कारण वह व्यक्ति ही अपनी अन्तर्बाह्य स्थितिकी जांच करके जान सकता और कह सकता है।

७

जीवन-निर्वाहका व्यवसाय

जीवन-सिद्धिके लिअे चित्तकी शुद्धिकी और चित्तशुद्धिके लिअे चित्तकी स्थिरताकी आवश्यकता है। अिसके लिअे अच्छे वाचन, मनन, संयम, निग्रह आदिकी तथा अपने जीवन्-निर्वाह्के लिअे अच्छे व्यवसायकी भी आवश्यकता है। अपने निर्वाह्का व्यवसाय यदि अुचित न हो, धर्म्य न हो, तो अुस ओरसे चित्त सदा अशुद्ध रहेगा। अपने धधेको हमे समाजके धारण, पोषण और रक्षणका अर्थात् धर्मयुक्त जीवनका महत्त्वपूर्ण भाग समझकर करना चाहिये।

कोअी मनुष्य समाजको किसी भी प्रकारकी हानि पहुचानेवाला व्यवसाय करते हुअे ध्यान, भजन और पूजनसे अपनी अुन्नति करनेकी अिच्छा रखे तो यह अुसका निरा भ्रम है। अपना समग्र जीवन शुद्ध मार्ग पर व्यतीत करनेकी योग्यता प्राप्त किये विना हम अपनी जीवन-सिद्धि प्राप्त नही कर सकते। यह वात न समझनेके कारण ही हमारी अवनति हो गअी है। हम सदा समाज-द्रोह करते है, फिर भी हम अपनेको अीश्वर-भक्त या अध्यात्म मार्ग पर चलनेवाले समझते है। यह व्यवसाय और धर्मको विलकुल भिन्न वस्तुअे समझनेका परिणाम है।

जीवन-सिद्धिका विचार करते समय हमे अपने व्यवसायकी अुपयोगिता और प्रामाणिकताका विचार करना चाहिये। अिस सादी और सरल बातको हम नही समझते, क्योकि हमने अपने ध्येयको अभी तक भलीभाति समझा नही है। अुद्योग-धधोका धर्मके साथ कोअी संवध नही है, वे जैसे चलते आये है वैसे ही चलते रहेगे, अुनमे हम कोअी परिवर्तन नही कर सकेगे; व्यापारमे असत्य और कपट रहेगे ही, अुनके विना हमारा काम नहीं चलेगा; हममे धार्मिक वृत्ति और भावना हो तो अपने सतोपके लिअे प्रतिदिन कोअी न कोअी धार्मिक क्रियाकाण्ड करते रहना काफी है, अुससे हमारे पापोका नाश होगा, पुण्यकी प्राप्ति होगी और मरनेके वाद सद्गति मिलेगी — अैसी श्रद्धा परम्परासे हमारे वीच चली आ रही है। अिसका परिणाम यह हुआ है कि हम सव धर्म और व्यवसाय दोनो दृष्टियोसे भ्रष्ट

होते रहे हैं। हमारी नीयत दिनोंदिन ज्यादा बिगडती गयी है। अनुपयोगी धार्मिक कर्मकाण्डके निमित्तमें हम बाहरी आडंबर, दंभ और धूर्तताका पोषण करते हैं। कर्मकाण्डसे परमेश्वर सन्तुष्ट होता है, पुण्य प्राप्त होता है, पापसे मुक्ति मिलती है, असी झूठी श्रद्धा रखकर समाजके साथ प्रामाणिक रहनेका हम कभी विचार ही नहीं करते। क्रियाकाण्डसे प्राप्त होनेवाले पुण्यसे अिहलोक और परलोकमें हमें सुख ही मिलेगा, अिस श्रद्धाके कारण हम समाज-द्रोह करते हैं। पाप करते रहना और अुनसे मुक्ति पानेके लिअे काल्पनिक और झूठे अुपाय करते रहना — अिस महाभ्रान्तिका हम जान-बूझकर पोषण करते आये हैं, अिसके फलस्वरूप धूर्त और दंभी लोगोंकी स्वार्थबुद्धिमें धर्मके बाह्य आडम्बरमें सदा वृद्धि होती रही है। दीर्घकालसे चली आअी अैसी परम्पराके कारण अिसी स्थितिमें जीवन बितानेसे हमारी और समाजकी हानि हुअी है। अिसे समझते हुअे भी हम यह परम्परा तोड नहीं सकते, अपनी झूठी श्रद्धाको छोडते नहीं और समाज-द्रोहके अपराधसे मुक्त नहीं हो पाते। परन्तु चित्तमें अपने श्रेयकी सच्ची अिच्छा जाग्रत हो और अुसके लिअे मनमें अुत्कण्ठा पैदा हो, तो साहसपूर्वक अिस महाभ्रान्तिसे हमें बाहर निकलना चाहिये और जीवन-सिद्धिका सच्चा मार्ग लेना चाहिये।

यह मान्यता गलत है कि सत्यसे व्यापार-धंधा नहीं चलता, कपट किये बिना पैसा नहीं मिलता। सत्य पर श्रद्धा रखकर हम कभी अनुभव नहीं लेते, परन्तु आरंभसे ही सत्यके विषयमें काल्पनिक भय रखकर हम असत्यका व्यवहार करते हैं और अुसके समर्थनके लिअे व्यवहारशास्त्रमें से सत्यके विरुद्ध सिद्धान्त बनाने लगते हैं। जीवनमें अिस प्रकारका रुख अख्तियार करनेसे वह अुत्तरोत्तर दृढ होता गया है और अन्तमें वह हमारा स्वभाव बन गया है। परन्तु थोडी हिम्मत रखकर हम सत्य पर श्रद्धा रखें और व्यवहारके लिअे आवश्यक दूसरे अनेक सद्गुणोंसे तथा कुशलतासे अुसे चलायें, तो कुछ दिनोंमें ही हमें विश्वास हो जायगा कि असत्यकी अपेक्षा सत्यसे व्यवहार चलानेमें हमारा तथा समाजका अनेक तरहसे कल्याण होता है। मनुष्य संसारमें दूसरोंसे प्रेम, विश्वास, आदर और सद्भाव पानेकी अिच्छा रखता है। यह सब अुसे असत्यसे प्राप्त होगा या सत्यसे? जिस पर सब लोग प्रेम, विश्वास, आदर और सद्भाव रखते हैं, अुसके लिअे अिस संसारमें

सद्व्यवसायसे निर्वाह चलाना असभव या कठिन नहीं हो सकता। व्यवहारमे हम अपना सबध प्रामाणिक मनुष्यके साथ रखना चाहते है या अप्रामाणिक मनुष्यके साथ? और यदि सभी लोग यह मानते है कि हमारा सबध प्रामाणिक मनुष्यके साथ हो, तो प्रामाणिकतासे व्यवसाय करनेवालेको अपने व्यवहारमे सफलता नही मिलती, यह हम किस आधार पर ठहराते है?

सत्यसे चलनेवाले मनुष्य पर हरअेक विश्वास रखता है और जिस प्रकार चलनेसे हम भी दूसरोंके विश्वासपात्र बनते है — यह जानते हुअे भी हम कपटका मार्ग लेते है। मुझे लगता है कि अिसका कारण अिस विषयमे हम पर पडे हुअे गलत सस्कार, कुसग और जीवनमे अिस प्रकारका अपनाया हुआ अनिष्ट रुख ही है। परन्तु अिसमे कोअी शका नही कि दुनियामे यदि हमे सपूर्ण रूपमे सफल बनना हो, तो यह ध्येय असत्य, कपट आदि दुर्गुणोसे कभी सिद्ध नहीं होगा। किसी भी समय वह केवल सत्यसे ही सिद्ध होगा। हमे समझना चाहिये कि असत्यका आश्रय वास्तवमे कोअी आश्रय ही नहीं है, बल्कि वह हमे और समाजको डुबानेवाला अेक मोह है। जो श्रेयार्थी है अुन्हे तो दृढ निश्चय करके असत्यसे बचना ही चाहिये।

मनुष्यको जितनी सुखकी अिच्छा होती है, अुतनी ही अुन्नतिकी भी अिच्छा होनी चाहिये। परन्तु वह केवल बाह्य अिन्द्रियो द्वारा सुखी होनेके पीछे अितनी तेजीसे दौड़ रहा है कि अुस तेजीके सामने वह अपनी अुन्नतिकी अिच्छा और आवश्यकताको भूल गया है। अथवा यह भी सभव है कि अिस विषयमे अभी तक वह पूरा जाग्रत नही हो पाया है। हमारा और हमारे परिवारका भरण-पोषण किसी तरह हो जाय अथवा परिवारके साथ हमे सुख-विलासमे रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाय तो बस है — अैसी मनोभूमिका आज हम सबकी बन गअी है। किन्तु हम थोडा विचार करे तो हमारी समझमे आ जायगा, हमे विश्वास हो जायगा कि मानव-जीवन हमे अितने तुच्छ सुखके लिअे नही मिला है। मनुष्यको प्राप्त हुअी अिंद्रियो, मन, बुद्धि और चित्तका जो विकास हुआ है, अुसकी जो सामाजिक और आर्थिक स्थिति है तथा अुसने विभिन्न प्रकारका जो शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया है, अुस सबके द्वारा अितना तुच्छ सुख प्राप्त करके सतोष मानना अुसकी मनुष्यताको शोभा नही देता। केवल अपनी और परिवारकी जरूरते पूरी करनेमे ही

वह धन्यता मान ले, तो अिसमें अुसके ज्ञानकी, प्राप्त शक्तियोंकी और अनुकूल परिस्थितियोंकी श्रेष्ठता कहां रही? सच पूछा जाय तो अिन सबका यथाशक्ति सदुपयोग करके अपनी मानवताकी वृद्धि करनेमें ही अुसे धन्यता अनुभव करना चाहिये। प्रामाणिकतासे सद्व्यवसाय चलाकर अपना और परिवारका धारण, पोषण तथा रक्षण करनेकी कला हमें आनी चाहिये। अुसके साथ हम सबकी सत्त्व-संशुद्धि होती रहे, अैसे प्रयत्न हमें सदा करते रहना चाहिये। यह संशुद्धि मानव गुणोंके अुत्कर्षसे ही हो सकती है। अुसीमें जीवनकी सिद्धि है। अुसके लिअे हमें समाजोपयोगी और समाजका हित साधनेवाले पवित्र व्यवसायकी आवश्यकता है।

८

नाम-स्मरणका अुचित महत्त्व

[यह संवाद १९३४ में अेक भाविक जिज्ञासुके साथ काशीमें हुआ था।]

भाविक — आपके कहनेमें कुल मिलाकर अैसा मालूम होता है कि अनेक प्रकारके देव-देवियों तथा अुनकी कथाओं पर आपको श्रद्धा नहीं है, परन्तु नाम-स्मरण पर तो आपकी श्रद्धा है न?

अुत्तर — आपका मतलब कैसी श्रद्धासे है?

भाविक — हमारे धर्मग्रंथोंमें जिस प्रकारकी श्रद्धा बताअी गअी है, वैसी।

अुत्तर — अुस श्रद्धाके विषयमें आप थोड़ी स्पष्टतासे अपनी बात कहें तो अच्छा हो।

भाविक — धर्मग्रंथोंमें रामनामकी बड़ी महिमा गाअी गअी है। राम-नाम अथवा परमेश्वर-वाचक किसी भी नाममें बहुत बड़ी शक्ति है, अैसा अुनमें कहा गया है और अुसे हमारे मन पर बैठानेके लिअे अजामिल, गणिका आदिकी अलग अलग कथायें वर्णन की गअी हैं। वैसे नाम-सामर्थ्य और महिमा पर आपका विश्वास है या नहीं?

अुत्तर — वैसे सामर्थ्य पर मेरा विश्वास नही है। परन्तु दूसरी तरहसे चित्तशुद्धिके बाह्य साधनके रूपमे नाम-स्मरणकी मदद ली जा सकती है, अैसा मेरा विश्वास है।

भाविक — यह आपके कथनका परस्पर विरोध मेरी समझमे नही आता। अत आप अपनी बात अधिक स्पष्टतासे समझाअिये।

अुत्तर — आपकी समझके अनुसार धर्मग्रन्थोमे रामनामका जैसा सामर्थ्य बताया गया है, अुस पर मेरा विश्वास नही है, यह मै पहले ही आपको बता चुका हू। अिसे अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता नही मालूम होती। अुसी प्रकार अजामिल, गणिका आदिकी कथाओको मै सत्य अितिहास अर्थात् घटी हुअी घटनाओके रूपमे नही मानता।

भाविक — यह आप कैसे कह सकते है? नाम-स्मरणकी जो महिमा और सामर्थ्य हमारे धर्मग्रथोमे वर्णित है, अुस पर विश्वास न करना नास्तिकताका लक्षण है। अुस वर्णन पर प्रत्येक हिन्दूका विश्वास होना चाहिये।

अुत्तर — अीश्वर-वाचक नामके स्मरण पर विश्वास रखनेका अुपदेश केवल हिन्दू धर्ममे ही नही, परन्तु ससारके सभी धर्मोमे दिया गया है। नाम-स्मरण पर विश्वास न होनेमे कितनी नास्तिकता है, अिसकी चर्चा अभी मै नही करूगा। परन्तु आप चाहते है वैसा विश्वास मेरा नाम-स्मरणमे नही है। फिर भी मै अपने विषयमे अितना कह सकता हू कि मै नास्तिक नही हू। और अिससे आगे जाकर यह भी कहना चाहता हू कि भलीभाति जाच करनेसे मालूम होगा कि धर्मग्रथोमे गाअी हुअी नाम-स्मरणकी महिमा और सामर्थ्य पर जैसा मेरा विश्वास नही है वैसा आपका भी नही है, और अिस काशीक्षेत्रमे किसीका भी विश्वास नही है।

भाविक — आप बिना सोचे-विचारे कुछ भी कैसे बोल रहे है? आपका भले अिस पर विश्वास न हो, परन्तु दूसरोका भी अुस पर विश्वास नही है, आपका यह कहना ठीक नही है।

अुत्तर — मेरा कहना बिलकुल ठीक है। यह मै आपको समझानेका प्रयत्न करूगा। अच्छा बताअिये, धर्मग्रथोमे नाम-स्मरणका अधिकसे अधिक क्या सामर्थ्य बताया गया है?

भाविक — कोअी मनुष्य कैसा भी पापी क्यो न हो, यदि वह केवल अेक बार रामनामका अुच्चारण करे तो अुस अेक बारके ही नाम-स्मरणसे

अुसके पापोंकी सपूर्ण राशि अुसी प्रकार जल जायगी, जिस प्रकार आगकी अेक चिनगारी घासकी पूरी गजीको जलाकर खाक कर देती है। आग जाने-अनजाने घासको लग जाय तो भी अुसे जला डालती है। अिसी प्रकार नाम-स्मरण करनेवालेका पाप नष्ट हो जाता है और अुसके पुण्यका अितना सचय हो जाता है, जिसकी कोअी सीमा नही।

अुत्तर — मैंने तो पहले ही स्वीकार कर लिया है कि मेरी अैसी श्रद्धा नही है। आपकी तो अिस सामर्थ्य पर श्रद्धा है न?

भाविक — है अर्थात्? अिस विषयमें मैं आपके जैसा नास्तिक नही हू।

अुत्तर — यह तो आपके बोलनेकी दृढ़तासे ही मालूम हो जाता है। खैर। परन्तु अब मैं आपसे पूछता हू। अेक अत्यन्त दुराचारी मनुष्य है। तरह तरहके दुराचारो — चोरी, झूठ, विश्वासघात, धोखेबाजी, क्रूरता आदिके लिअे अुसे कअी बार सजा मिल चुकी है। अैसे मनुष्यसे मैं अेक बार नही, हजार बार आपके सामने रामनाम लिवाअूगा। अेक बार रामनाम लेनेसे भी यदि किसी मनुष्यके पापोंकी राशि जल जाती है और वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है, तो फिर हजार बार नाम लेनेके बाद तो अुसकी निष्पापताके विषयमें शका करनेका कोअी कारण नही होना चाहिये। अुलटे, अुसके पुण्योंका सचय होगा। तो अिस तरह आपके समक्ष निष्पाप और पुण्यवान बने हुअे मनुष्यको, धर्मग्रथोंके कथनानुसार हजार गुना पवित्र बने हुअे मनुष्यको, आप अपने परिवारमें आश्रय देनेके लिअे, केवल नौकरके तौर पर रखनेके लिअे भी तैयार होंगे? अपने स्त्री-पुत्रादिसे अुस पर विश्वास रखनेको कहेंगे? धर्मग्रथोंकी अैसी बातों और अनुमानों पर मेरा विश्वास न होनेसे मैं तो अुस मनुष्यको अपने घरमें नही रख सकता। परन्तु नाम-महिमा पर आपकी श्रद्धा होनेसे अुस मनुष्यको अपने घरमें स्थान देनेके लिअे आपको आनन्दपूर्वक तैयार रहना चाहिये। धर्मग्रथोंमें बताया गया है अुससे अधिक प्रायश्चित्त करने पर तो आप अुसे अपने घरमें रखेंगे न?

भाविक — नही, मैं अुसे अपने घरमें, अपने स्त्री-पुत्रादिके बीच रखनेको तैयार नही होअूगा, और किसीको भी अुस पर विश्वास रखनेके लिअे नही कह सकूगा।

अुत्तर — खैर, क्या आपको लगता है कि अिस काशीक्षेत्रमें भी कोअी अुसे आश्रय देनेको तैयार होगा?

भाविक — मुझे नही लगता कि कोअी तैयार होगा।

अुत्तर — तो अिससे यह सिद्ध होता है कि मै, आप और अिस काशी-क्षेत्रके सारे लोग समान मतके है। तव केवल मै ही अेक नास्तिक और आप सव आस्तिक, अैसा कैसे कहा जा सकता है? मुहसे तो रामनामकी महिमा और सामर्थ्यकी वात करना और प्रत्यक्ष व्यवहारमे अुस पर विश्वास न रखना, क्या अिसे ही आस्तिकताका लक्षण माना जाय? जव आपका यह विश्वास है कि अेक वार रामनाम लेनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, तो अुस पर प्रत्यक्ष अमल करनेका मौका आने पर आपको अुस विषयमे शका क्यों होनी चाहिये? खैर। कुल मिलाकर व्यवहार पक्षकी जाच करने पर मालूम हो जाता है कि धर्मग्रथोकी वातो पर हममे से किसीका विश्वास नही है। केवल वाद-विवादके लिअे हम जो विश्वास वताते है, वह सच्चा विश्वास है अैसा नही कहा जा सकता। क्या आपको कभी भी अैसा लगेगा कि अुस मनुष्यको घरमे न रखनेमे आप कोअी गलती कर रहे है?

भाविक — मुझे अैसी सभावना मालूम नही होती। मुझे तो लगेगा कि अुसे घरमे न रखनेमे ही वुद्धिमानी है। परन्तु अव मेरे मनमे प्रश्न अुठता है कि धर्मग्रथोमे अैसा वर्णन करने और अैसी कथाये लिखनेका कारण क्या होगा? क्या ये सव कथाये झूठी है?

अुत्तर — पहली वात। धर्मग्रथोंकी कथाये अितिहास अर्थात् घटी हुअी घटनाये है, अैसा जो हम समझते है वह हमारी पहली गलती है। किसी अच्छे तत्त्वका रस लोगोको लगानेके लिअे वैसी रोचक वाते लिखनी पड़ती है। अैसा लिखते हुअे कुछ मौको पर लेखक अतिशयोक्ति भी करता है। परमेश्वरका नाम लेना अच्छी वात है। ग्रथकार अुस अच्छाअीको काल्पनिक कथाओ द्वारा लोगोके मन पर जमानेका प्रयत्न करता है। अिस प्रयत्नमे ग्रथकार यथार्थता और सुसगतिका भान नही रख पाता। अिसके फलस्वरूप वहुतसी कथाओमे अतिशयता और विसगतताके दोष दिखाअी देते है। अथवा यह भी सभव है कि जिस जमानेमे ये कथाये लिखी गअी, अुस जमानेमे अैसी अतिशयतापूर्ण रोचक कथाओका लोक-मानस पर कुछ अिष्ट प्रभाव पडता होगा। छोटे वालकोके लिअे जो कथा-कहानिया लिखी जाती है, वे सच्ची नही होती। जिन कहानियोमे अद्भुतता, विचित्रता तथा थोडा चमत्कार होता है, वे वालकोको आकर्षक लगती है। कुछ लोगोकी मन स्थिति बड़े

हो जाने पर भी बालको जैसी ही होती है। अुन्हे भी अद्भुतताके बिना कथा-कहानियोंमें रस नही आता। परन्तु अज्ञान मिटने पर जैसे-जैसे मनुष्यको ज्ञान प्राप्त होता जाता है, वैसे-वैसे सच्ची, ज्ञान-प्रधान, सुसगत और सभवनीय कथाये अुसे अच्छी लगने लगती है। शास्त्रीय दृष्टिसे जो बाते सत्य सिद्ध हो सकती है, अुन्हीको माननेकी वृत्ति अुसमे आ जाती है। अर्थात् ज्यो-ज्यो मनुष्यका ज्ञान बढता है, त्यो-त्यो वह ज्ञानकी अुपासनाकी ओर मुडता है। मानव-मनके अैसे विकास-क्रमको ध्यानमे लेनेसे मालूम होता है कि जिन जमानेमे अैसी रोचक और अतिशयोक्तिपूर्ण कथाये लिखी गअी, अुन जमानेमे लोक-मानस अैसी बातोको सत्य माननेवाला और अुनमे रस लेनेवाला होना चाहिये। अुनमें से ही अुन समयके वातावरणके अनुसार लोगो पर कुछ अच्छी बातोका सस्कार पडा होगा। आज भी नाटको और अुपन्यासोमे लेखक छत्रपति शिवाजी, राणा प्रताप आदि पात्रो पर अपनी मनोभावनाके अनुसार रग चढा देते है। अुस परसे कोअी आग्रह-पूर्वक यह कहे कि अुन पुरुषोका जीवन वैसा ही था तो क्या ठीक होगा? यही विचारसरणी आप धार्मिक ग्रथो पर लागू करके देखें, तो आप स्वय ही यह निर्णय कर सकेंगे कि अुनकी कथायें सच्ची है या झूठी।

आपने अजामिलका अुदाहरण दिया। परन्तु अुस कथाको आपने कभी विवेककी कसौटी पर कसा है? अुस कथाके सभव-असभव होनेका विचार कभी आपके मनमे आया है? अुसके विषयमे कभी शका भी आपके मनमे अुठी है? अजामिल अत्यन्त पापी था। अुसने मरते समय नारायण नामक अपने पुत्रको पुकारा। वह पुकार सुनते ही स्वय भगवानको लगा कि अजा-मिल मुझे ही बुला रहा है, अत भगवान प्रत्यक्ष अुसके समक्ष आकर खडे हो गये। अत्यन्त पापी अजामिलने पुत्रके निमित्तसे 'नारायण' नामका अुच्चारण किया और वह वैकुण्ठको गया — अिस तरह नाम-स्मरणकी महिमा हमारे मन पर ठसाते हुअे कथाका अन्त होता है। अिस बातको सत्य अितिहास माना जाय या कथा माना जाय? अिसी तरह अेक प्रश्न यह भी है कि अुसमे दिखाअी देनेवाली विसगतता और प्रयोजन-रहितताके लिअे किसे जिम्मेदार माना जाय? अुसे सत्य माने तो यह दोष भगवानके सिर आता है, और कथा माने तो लेखकका दोष मालूम होता है। सर्वां-तर्यामी और सबके मनको जाननेवाले भगवान अितना भी नही समझ सके

कि अजामिल नारायण नामसे अपने पुत्रको बुलाता है या मुझे? अुस कथाको सत्य माने तो अैसा प्रश्न मनमें अुठता है। और वह कथा है अैसा कहें तो मानना पड़ेगा कि नाम-स्मरणकी महिमा लोगोंके मन पर ठसानेके प्रयत्नमें लेखकको अिस बातका भान नहीं रहा कि हम भगवानको कैसी गलती करनेवाला समझ रहे हैं। अेक बार पुत्रके निमित्तसे लिये हुअे नारायण नामसे महान पापी भी यदि वैकुण्ठको जाता है, तो अुसके बाद अुस समयसे लेकर आज तक असंख्य भले मनुष्योंने भक्तिभावसे सदैव नाम-स्मरण किया, फिर भी अुनमें से अेकको भी वैकुण्ठ ले जानेके लिअे विमान लानेका अेक बार भूलसे भी भगवानको क्यों नहीं सूझा? अिसलिअे विचार करने पर अिस प्रकारकी सारी अद्भुत कथाओंमें बहुत बड़ी प्रयोजन-रहितता, विसंगति, अतिशयता आदि दोष दिखाअी देते हैं। अतः विवेकी मनुष्य अिन सब कथाओंको अितिहास न मान कर अीसप-नीतिकी कहानियोंकी तरह अुनमें से तात्पर्य खोज निकालनेका प्रयत्न करता है। अतिशयता, विसंगति, असंभवनीयता आदि दोषोंको छोड़कर नीति, सदाचार, सद्गुण आदिकी दृष्टिसे हमारे धार्मिक ग्रंथोंकी बातोंका विचार करना हमें आये —— अुनमें से अुचित सार निकालना हम सीखें, तो अुनमें कितना ही बोध हम ग्रहण कर सकते हैं। मानव जीवनके कितने ही महान सूत्र अुनमें से भी हमें मिल सकते हैं। परन्तु यह सब सिद्ध करनेके लिअे हमें अुनका परीक्षण करना आना चाहिये।

अस्तु। अब मैं पुनः नाम-स्मरणकी बात पर आता हूं। जांच करनेसे मालूम होता है कि धर्मग्रंथोंमें कहे अनुसार मेरी, आपकी या अन्य किसीकी नाम-स्मरण पर श्रद्धा नहीं है। मैं केवल नाम-स्मरणको महत्त्व नहीं देता। मैं मनुष्यके नैतिक आचरणको महत्त्व देता हूं। नाम लेनेवाले दुराचारी मनुष्यकी अपेक्षा नाम न लेनेवाले प्रामाणिक और सदाचारी मनुष्यको मैं अधिक अच्छा मानता हूं। वह नाम-स्मरण करता है या नहीं, अथवा कितनी बार करता है, यह देखनेकी मुझे आवश्यकता नहीं मालूम होती। अुसमें सत्य, मैत्री, दया, प्रामाणिकता, सरलता, अुदारता, कर्तव्य-निष्ठा आदि सद्गुण हैं या नहीं, यह देखकर मैं अुसमें विश्वास या अविश्वास रखता हूं। आप भी किसीके साथ व्यवहार करते समय अिन्हीं गुणोंको देखते होंगे, और दूसरे लोग भी किसी पर विश्वास रखते समय यही नियम काममें लेते हैं। मैं

अनुभवसे जानता हूं कि विश्वास रखनेके विषयमें कोअी नाम-स्मरणको महत्त्व नहीं देता।

केवल नाम-स्मरणसे कोअी पापसे मुक्त नहीं हो सकता, परन्तु पश्चात्तापसे पापमुक्त हो सकता है। पश्चात्तापके बिना लिया हुआ रामनाम व्यर्थ है। पश्चात्तापके बिना लिया हुआ रामनाम मनुष्यको भावी दुष्कृत्योंसे नहीं बचा सकता। हृदयका सच्चा पश्चात्ताप पापोंको ही नहीं जला देता, बल्कि पापके मूलको भी जला सकता है। पश्चात्तापके बाद भावनापूर्वक लिया हुआ रामनाम पश्चात्तापसे अुत्पन्न हुअी शुद्धिको स्थायी रखनेमें अुपयोगी सिद्ध होता है और चित्तके पवित्र संकल्पको बल प्रदान करता है। परन्तु यह सब तभी हो सकता है जब मनुष्यके मनमें पापके लिअे तीव्र पश्चात्ताप हो और फिरसे पापकी ओर न जानेका दृढ निश्चय हो।

अनेक लोग रामनाम लेते हैं। परन्तु अुसके पीछे सबके हेतु समान नहीं होते। भिखारी, दंभी और भक्त तीनों रामका नाम भूलते नहीं। परन्तु अिन तीनोंके मूल हेतुमें कितना अन्तर होता है? नामके आधार पर भिखारी चार पैसे पाता है, दंभी अपना दंभ चलाता है और भक्त अुसी नामकी सहायतासे अपनी चित्तशुद्धि करता है। नाम अेक होते हुअे भी प्रत्येकको अपने हेतुके अनुसार अलग अलग सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि नाममें किसीको भी स्वतंत्र रूपसे पवित्र करनेका सामर्थ्य नहीं है। अतः केवल नामको महत्त्व न देकर, अुसकी महिमाको न बढाकर, अुसे लेनेवालेके हेतुकी पवित्रता और अुदात्तताको महत्त्व देना सीखना चाहिये। मनुष्यकी परीक्षा हमें अुसके जीवनके हेतुसे और अुसे सिद्ध करनेके अुसके साधनों और पद्धतिसे करनी चाहिये। नाम-स्मरण चित्तशुद्धिका सबसे श्रेष्ठ और सबसे आसान साधन माना गया है। परन्तु आत्म-परीक्षणसे जो अपने दोष खोज लेता है, जिसे अुन दोषोंके लिअे पश्चात्ताप होता है, लज्जा आती है, दोषोंसे अपने मनको दूर रखकर अपनी शुद्धि करनेका जिसका चारों ओरसे सतत प्रयास जारी रहता है तथा सद्गुणी और सदाचारी बननेमें ही जो जीवनकी धन्यता मानता है, वही अपने हेतुकी सिद्धिमें नाम-स्मरणका कुछ अुपयोग करना चाहे तो कर सकता है। मनुष्यके मनमें अपनी चित्तशुद्धिके लिअे अैसा दृढ हेतु — अैसा दृढ संकल्प होना चाहिये। अुसकी दृढताका आधार संकल्प-बल पर होता है। और

सकल्पके सातत्यके बिना सकल्पमे बल नही आ सकता। सदैव जागृति रहे बिना सातत्य नही रह सकता। जागृतिके लिअे किसी बाह्य स्थूल साधनकी आवश्यकता होती है। साधनके प्रति पवित्रताकी भावना होनी चाहिये। नामके जैसा पवित्र लगनेवाला, आसान, सरल, श्रमरहित और बिना खर्चका दूसरा कोओी साधन अभी तक प्राप्त नही हुआ है। न तो अुसके चुराये जानेका भय है और न अुसके बिगडनेका कोओी भय है। नामके साधनकी यह खूबी है। परन्तु यह सब समझते हुअे भी हमे यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि केवल नाममे कोओी शक्ति नही होती। मनुष्यके मनमे चित्त-शुद्धि और अुन्नतिकी प्रबल अिच्छा हो और अुस अिच्छाके साथ हेतुकी दृढता, सकल्पका बल, बढता रहे तो ही नामका कुछ अुपयोग हो सकता है। वर्ना वह व्यर्थ है। पूजा, मत्र, जप, प्रार्थना, स्तवन, तीर्थाटन, प्रदक्षिणा तथा नाम-स्मरण आदि सबमे चित्तको जाग्रत करके अपने पवित्र सकल्पमे बल लानेका अुद्देश्य होना चाहिये। सकल्पकी सतत स्मृतिके लिअे चित्तको किसी बाह्य स्थूल साधनकी आवश्यकता होती है। अुसके लिअे नाम-स्मरण अिन सबमे आसान साधन है। हमारे जीवनके शुद्ध हेतुकी सिद्धिके लिअे अिन सबका कुछ अुपयोग हो सके तो ही अुनका कोओी मूल्य है। वैसा न हो सके तो जीवन-शुद्धिकी दृष्टिसे अुन सबका कोओी मूल्य नही है। हेतु शुद्ध हो तो अिन साधनोके बिना भी मनुष्य अपनी शुद्धि कर सकता है। परन्तु अुसका हेतु शुद्ध न हो तो केवल बाह्य साधनोसे कोओी लाभ नही हो सकता, क्योकि अुनमे स्वतंत्र रूपमे मनुष्यका अुद्धार करनेका कोओी सामर्थ्य नही होता। अुनमे सचमुच अैसा सामर्थ्य होता तो रामनाम लेनेवाले भिखारियोका, दभियोका और हम सबका आज तकमे अुद्धार हुअे बिना नही रहता।

९

चमत्कारका भ्रम

प्रत्येक विचारशील मनुष्य जानता है कि कारणके विना कोओी कार्य नही होता। सृष्टिमे छोटी-वडी जो भी घटनाये घटती है, अुन सबके पीछे कारण-परम्परा होती है। जब हम सृष्टिकी या अपने भीतरकी किसी असाधारण घटनाके पीछे रहे कार्य-कारणभावको जान नही सकते, तब हम अुसे चमत्कार कहते है। आज ससारमे वायरलेस, टेलिफोन, रेडियो आदिकी अनेक वडी शोधे हुआी है, परन्तु अुन्हे कोओी चमत्कार नही कहता। क्योकि हमे अिस वातका पता है कि अुनके पीछेके कार्य-कारणभावको हम स्वय भले न जाने, परन्तु अुस शास्त्रके अनेक शोधक और अभ्यासी लोग तो जानते ही है। ये बाते भौतिक विषयकी है, अिसलिअे अुनमे हमे कोओी दिव्यता नही मालूम होती। शरीर और वुद्धिका असाधारण सामर्थ्य देखकर हमे कोओी चमत्कार जैसा नही लगता। कठिन स्थितिमे भी सज्जन मनुष्य यदि शाति वनाये रखे अथवा शील-सदाचारके लिअे कोओी कडी मुसीवते सहन करता हो, तो अुसमे हमे कोओी दैवी चमत्कार नही मालूम होता। मदारी या जादूगरके प्रयोग देखकर चमत्कार लगता है, परन्तु अुनमे दिव्यता नही मालूम होती। जब कार्य-कारणभावके विषयमे अज्ञान होता है, तब किसी विलक्षण घटनाके विषयमे हमे अद्भुतता मालूम होती है, चमत्कार भी लगता है, किन्तु दिव्यताकी भावना हमारे मनमे नही अुठती। परन्तु जब हमारे चित्तमे भक्तिभाव हो, और असभव लगनेवाली कोओी अत्यत आवश्यक घटना अचानक घटित हो जाय अथवा अुस घटनासे किसी सत्पुरुषका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बाह्य सबध हो अथवा है अैसी हमारी केवल कल्पना हो, तो हम अुस घटनाको दैवी चमत्कार कहते है। प्रतिदिनकी जरूरते पूरी करनेका अुचित मार्ग न होनेसे जिस समाजमे असन्तोष और दीनताका भाव बहुत ज्यादा वढ जाता है और जो समाज अनेक प्रकारके अज्ञानोका शिकार होता है, अुस समाजमे दैवी चमत्कारका प्रताप वडी मात्रामे दिखाओी देता है। जाच करने पर मालूम होता है कि अुन सब चमत्कारोमे चमत्कारका भ्रम ही होता है। किसी देवता, सत्पुरुष अथवा अुसकी मूर्ति या समाधिके

आसपास चमत्कारकी सृष्टि निर्माण हुअी रहती है। अिन सबके पीछे कामना, पुरुपार्थहीनता और अज्ञान ही मुख्यत देखनेमें आता है।

हमारे समाजमे वेदमत्रोके विषयमे प्राचीन कालमे बडी भारी श्रद्धा रही है और आज भी है। अुन वेदमंत्रो पर प्रतिष्ठापूर्वक जीवन-निर्वाह करनेवाला अेक वर्ग समाजमे आज भी मौजूद है। परन्तु अुन वेदमत्रोमे सचमुच कोअी सामर्थ्य है या नही, और है तो कितना है, अिस विषयमे किसीने कोअी शोध नही की। अिसलिअे वह विषय केवल अन्ध परम्परासे ही चला आया है। समाजकी कामना, पुरुपार्थहीनता और अज्ञानके कारण अुस परम्परामे कोअी विशेष बाधा नही आअी। मत्रमे दैवी सामर्थ्य है, अैसी श्रद्धाके कारण देवताके नाम पर बैठाअी हुअी मूर्ति, समाधि और पादुकामे भी मत्र द्वारा दिव्य सत्त्व प्रस्थापित करके वही अुसे स्थिर कर दिया जाता है। अुसके लिअे बीच-बीचमे केवल वेदमत्रकी पुनरावृत्ति ही करनी होती है। श्रद्धाकी वजहसे गरजमन्द, दीन और निराधार लोगोको कुछ न कुछ मानसिक आधार मिल जाता है और दूसरे अेक वर्गको धन और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। परम्पराके प्रवाहमे अेक शक्ति होती है, अिस कारण प्रचलित मान्यतामे कोअी अर्थ या सचमुच कोअी सामर्थ्य है या नही, यह जाचनेकी बुद्धि किसीको सूझती नही। गरजमन्द और निराधार लोगोमे सभी गरीब या अज्ञान वर्गके नही होते। अुनमे धनी और विद्वान लोग भी होते है। 'गरजमन्दको अक्ल नही होती' यह कहावत अनेक अर्थोवाली है और अनुभव-ज्ञानसे निकली हुअी मालूम होती है। निराधार हो जानेके बाद धनी या विद्वानकी भी अक्ल मारी जाती है। अिस वजहसे किसीके मनमे यह विचार नही अुठता कि प्रचलित परम्पराकी मान्यता और श्रद्धामे वस्तुत सत्यका कितना अश है। परम्पराके प्रवाहमे बहनेवालोंमे सभी श्रद्धावान होते है अैसा भी नही है। दीन और गरजमन्द लोग जिस वस्तुका श्रद्धासे आचरण करते है, अुसीका धनी और खुशहाल लोग भी आचरण करते है। अुसमे थोडा भाग श्रद्धाका होता है और बहुत बडा भाग अपना अैश्वर्य, वैभव और बडप्पन दिखानेका होता है। गरीबकी पूजा-विधिमे ठाटबाटकी अपेक्षा श्रद्धाका भाग अधिक होता है, जब कि श्रीमन्तकी अुसी पूजा-विधिमे बाहरी तड़क-भडक, ठाटबाट और आडम्बर अधिक होता है और श्रद्धाका भाग बहुत कम रहता है। गरीबको जो

प्रसंग भक्ति-भावनाका लगता है, वही प्रसंग धनीको अपना अैश्वर्य बतानेका लगता है। श्रीमन्तोंमें यदि वास्तवमें भक्तिभाव होता और भक्तियुक्त कर्ममें अुन्हें आनन्द और प्रसन्नता अनुभव होती, तो वे देवी-देवताओंका पूजन पैसा लेकर काम करनेवालोंको न सौंप देते बल्कि खुद ही करते। सारांश यह कि किसीने दीन और असहाय होनेके कारण, किसीने अपनी श्रेष्ठताका प्रदर्शन करनेके लिअे, तो किसीने भक्ति-भावनाका दिखावा करनेके लिअे — अिस प्रकार सभीने श्रद्धाकी परम्परा जारी रखी है।

वैदिक मन्त्रोंकी तरह नाममंत्र पर भी हमारे लोगोंकी श्रद्धा है। अीश्वर-प्राप्तिके या भक्तिके मार्ग पर चलनेवाले व्यक्तिके पीछे लोग श्रद्धासे चलते हैं। नाम-स्मरण, भक्ति आदिके द्वारा अुस व्यक्तिमें भी थोड़ा-बहुत सामर्थ्य आता है और अुससे शारीरिक पीड़ा तथा रोग दूर होते हैं और पारिवारिक दुःख, कठिनाअियां और संकट नष्ट होते हैं — अैसी लोगोंकी मान्यता है। अीश्वर-भक्त या साधुकी ओर भक्तिभावसे जानेवाले भाविकोंके दुःख चाहे जिस कारणसे दूर हुअे हों, तो भी भाविक मनुष्य समझते हैं कि वे साधुके दिव्य सामर्थ्यसे ही दूर हुअे हैं और अुसका श्रेय वे साधुको ही देते हैं। अिस प्रकार किसी मनुष्यकी भक्ति-भावना जब किसी साधु पर जम जाती है, तो जीवनकी प्रत्येक अच्छी बातका कर्तृत्व वह अुस साधुको देने लगता है और प्रत्येक अिष्ट मालूम होनेवाली बातके कार्य-कारणभावको अन्तमें साधुके दिव्य सामर्थ्यके साथ जोड़कर अपनी श्रद्धाको दृढ़ करता है। अिससे वह अेक प्रकारका आनन्द अनुभव करता है। अुसे लगता है कि जीवनमें अेक आधार मिल गया है। सकामिक, पुरुषार्थहीन, अज्ञानी और भोलेभाले लोगोंमें यह बात फैल जाती है और बादमें वे भी अुस अीश्वर-भक्तके पीछे लगते हैं। अिस प्रकार अद्भुत शक्ति और सामर्थ्यके भ्रमके कारण अुस साधुका महत्त्व बढ़ने लगता है। लोग अुसके तरह-तरहके चमत्कारोंका वर्णन करने लगते हैं। अुसके भक्तों और अनुयायियोंकी संख्या बढ़ती है। अुनमें से कुछ भाविक होते हैं तो कुछ केवल सकामिक होते हैं। कोअी अीश्वरकी कृपाके लिअे तो कोअी मरणोत्तर गतिके लिअे, कोअी मोक्षके लिअे तो कोअी अपनी सांसारिक कठिनाअियां दूर करनेके लिअे अुसके शिष्य बनते हैं। अिस प्रकार वह अीश्वरकी भक्ति करते-करते सत्पुरुष बनता है। अुसमें से आगे बढ़कर वह दिव्य सामर्थ्यवाला, चमत्कारी और साक्षात्कार किया हुआ

बनता है। अुसीमें अुसे गुरुपद प्राप्त होता है। जैसे-जैसे लोगोंमें अुसकी कीर्ति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वह गुरुसे भगवान बनता जाता है। अुसे अीश्वरका अवतार माना जाता है। अुसके भक्त और शिष्य अुसे जगत्की अुत्पत्ति, स्थिति और लयका कर्त्ता बना देते हैं; अनन्त ब्रह्माण्डका स्वामी बना देते हैं। वे अुसके अद्भुत दिव्य सामर्थ्यका वर्णन करने लगते हैं। जन्मसे पहलेके, जन्म-समयके और अुसके बादके अुसके दिव्य चमत्कारोंका वर्णन किया जाता है। अुसके विषयमें दिव्य कथायें रची जाती हैं। परन्तु परमेश्वरका वह अवतार कभी कहता नहीं कि ये सब दिव्य चमत्कार और दिव्य कथायें झूठी हैं। अुलटे, अैसे चमत्कार और कथायें सर्वत्र फैल जाय, अिसके लिअे वह अुन्हें प्रोत्साहन देता है। प्रत्येक साधुके चरित्रको अुसके भक्त चमत्कारोंसे भर देते हैं। अैसा करनेमें अुन्हें भक्ति, श्रद्धा, आनन्द और कृतकृत्यताका अनुभव होता है। यह प्रत्येक साधुके विषयमें, कमसे कम गुरु कहलानेवाले साधुके विषयमें निश्चित रूपसे जाननेको मिलता है। समाजमें हर जगह यही समझा जाता है कि चमत्कार ही साधु और सत्पुरुषकी सच्ची शक्ति और सच्चा लक्षण है। परन्तु अिन सबका कारण अीश्वर-भक्ति या किसीका दिव्य सामर्थ्य नहीं होता; अिसका कारण होती है लोगोंकी कामना, स्वार्थ, अतृप्ति, पुरुषार्थहीनता, अज्ञान, भोलापन, भक्तिकी गलत कल्पना, साधु कहलानेवालोंका दंभ, अुनमें सत्योपासनाका अभाव, अपने विषयमें अुनका अज्ञान और गुरुपदके कारण प्राप्त होनेवाले अैश्वर्य और प्रतिष्ठाका लोभ। अिन दोषोंके आधार पर ही कुछ सम्प्रदायोंका निर्माण होता है और वे चलते हैं।

वैदिक मंत्रोंके सामर्थ्यसे मूर्तिमें देवत्व और दिव्यता अुत्पन्न होती है, अिस लोकमान्यताके कारण अथवा अुस पर जिन लोगोंका निर्वाह होता है अुनके लोभके कारण समाजमें जितना भ्रम और दंभ पैदा होता है और जितने हानिकारक परिणाम अुत्पन्न होते हैं, अुनसे अधिक भ्रम और दंभ अिस श्रद्धाके कारण पैदा होते हैं कि नाम-स्मरणसे अीश्वर सन्तुष्ट होकर दर्शन देते हैं, जिसे अीश्वर-ज्ञान और दर्शन हुआ है अुस साधुकी दिव्य शक्तिसे चाहे जैसे चमत्कार हो सकते हैं और अुसमें दिव्य सामर्थ्य होता है। अिस श्रद्धाके समाज पर अधिक बुरे परिणाम हुअे हैं और आज भी होते हैं। वैदिक मंत्रोंके प्रणेता

और ज्ञाता ब्राह्मण अधिकसे अधिक अपनेको भूदेव कहलवाते थे और यह कहते तथा कहलवाते थे कि मूर्तिमें परमेश्वरी सत्त्व है। अुनके लोभ और महत्त्वाकांक्षाकी अेक मर्यादा होती थी। परन्तु नाम-स्मरणसे अीश्वरको अपना बनानेवाले साधु या गुरु स्वयं ही अीश्वर बन जाते हैं और अपनेको अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक कहलवाने लगते हैं। ब्राह्मण कभी अपने ब्राह्मणत्व पर धनी या अैश्वर्यवान नहीं बने थे, ब्राह्मणत्वके बल पर दूसरोंको फंसा कर वे कभी दुराचारी नहीं बने थे। परन्तु अीश्वरके नाम पर अीश्वर बननेवाले साधु अैश्वर्यवान होते हैं और दुराचारी भी होते हैं तथा अपनी गादियोंकी स्थापना करके अैश्वर्य, दुराचरण और समाजमें भोलेपन व अज्ञानकी परंपरा जारी रखनेमें कारण बनते हैं।

हमारे समाजमें आज तक अीश्वरके अनेक अवतार हो चुके हैं, फिर भी हमारे दैन्य, अज्ञान और दुर्गुणोंका नाश नहीं हुआ। हममें पुरुषार्थ या कर्तृत्व नहीं आया। अिस परसे कहा जा सकता है कि अेक ओर यदि वैदिक मंत्रोंकी अपेक्षा नाममंत्रका परिणाम समाज पर थोड़ा अच्छा हुआ हो, तो भी दूसरी ओर भोली भावुकतासे हमारा नुकसान ही हुआ है। अीश्वर-ज्ञान, साधुता और सात्त्विकतासे मनुष्यका अहंकार नष्ट होता है, मनुष्य पवित्र और निःस्वार्थ बनता है और मनुष्यमात्रका सेवक बनकर सबके साथ नम्रताका व्यवहार करता है — अैसा कहकर अेक ओर हम ज्ञान, सात्त्विकता और साधुताकी महिमा गाते हैं और दूसरी ओर अपनेको ज्ञानी, साधु और सात्त्विक कहनेवाले लोग स्वयं अीश्वर बनते हैं, अैश्वर्यवान बनते हैं, लोगोंसे मान-प्रतिष्ठा और पूजा प्राप्त करते हैं और अपनेको सबसे श्रेष्ठ मानते हैं। तन-मनसे अीश्वरकी भक्ति करनेवाले, अुसके सामने नम्र रहनेवाले कुछ ही समय बाद अीश्वर कैसे बन जाते हैं और अीश्वर कहलानेमें अुन्हें शंका या संकोच क्यों नहीं होता, अिसकी हमें कल्पना भी नहीं आती। अीश्वरको किसीने जाना है या नहीं, अुसी तरह कोअी अुसे कभी जान सकेगा या नहीं, अितना ही नहीं, कोअी जाना जा सकने लायक अीश्वर-रूपी तत्त्व है भी या नहीं — अिस तरहकी अेकसे अेक जबर-दस्त शंकायें अीश्वरके विषयमें रहते हुअे भी अपनेको अीश्वर कहलवाकर श्रेष्ठता प्राप्त करनेमें, लोगों पर वैसी छाप डालनेमें और लोगोंकी पूजा स्वीकार करनेमें मनुष्यको थोड़ी भी शंका, संकोच और भय न हो यह

बड़े आश्चर्यकी बात है। अिसमें जरा भी संदेह नहीं कि मानवताकी दृष्टिसे यह वस्तु निरा भ्रम और दंभ निर्माण करनेवाली है।

चमत्कारके विषयमें हमारी जो श्रद्धा है, वही अिन सब अनर्थोंका कारण है। साधुमें चमत्कार-शक्ति न होने पर भी अुसके पीछे पड़नेवाले किसी कामनिक भक्तकी कामना काकतालीय न्यायसे कभी पूरी हो गअी हो, तो अुसका श्रेय वह भक्त अुस साधुके अद्‌भुत सामर्थ्यको देता है। परन्तु अिसमें चमत्कार क्या है, अिसकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं जाता। अुसका कार्य-कारणभाव क्या है, अुसमें सत्य कितना है, भ्रम कितना है, काकतालीय न्याय कितना है, वास्तवमें किसी अचिन्त्य कारणसे कोअी घटना हो गअी हो और वह चमत्कार जैसी लगती हो तो अुसका कारण क्या है, वह कारण सदैव हमारे हाथमें रह सके अैसा कोअी साधन है या नहीं, हो तो कौनसा है और अुसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है, अद्‌भुत या चमत्कारी लगनेवाली घटनाके साथ सृष्टिकी या अपनी किसी अज्ञात शक्ति अथवा नियमका संबंध है या नहीं — अिन सब बातोंका साधु या भक्त किसीने भी कभी विचार नहीं किया होता। वह साधु समझता है कि लोगोंको मेरे विषयमें होनेवाले चमत्कारके भ्रमके कारण मैंने गुरुपद और अन्तमें अीश्वर-पद प्राप्त किया और अुससे मैं कृतार्थ हो गया, और भोलेभाले भक्तों द्वारा अुसे दिये हुअे अीश्वर-पदके कारण, भक्तों द्वारा अुस पर किये गये हिप्नोटिज्मके कारण, वह अपनी साधक दशाको भूल जाता है, भ्रममें पड़ जाता और फंस जाता है, अैसा विवेककी दृष्टिसे कहना पड़ता है। अुसने मानवताका खयाल रखा होता और अपनी साधक अवस्थामें वह यदि सावधान रहा होता, तो शायद अपने जीवनमें कुछ चमत्कार जैसा लगने पर अुसके कार्य-कारणभावकी अुसने खोज की होती। प्रत्येक साधकने अैसा प्रयत्न किया होता, तो अीश्वर-दर्शन, अीश्वर-अवतार और चमत्कारके भ्रम पर हमारे देशमें अनेक सम्प्रदायोंकी स्थापना न हुअी होती। अिस सब परसे अैसा लगता है कि कोअी गूढ़ लगनेवाली वस्तुके विषयमें खोज करनेकी अपेक्षा, अुसकी सत्यासत्यताकी जांच करनेकी अपेक्षा, कोअी भी महान पद प्राप्त करके अुसे बनाये रखनेकी ओर ही अीश्वर-प्राप्तिके मार्ग पर लगनेवाले लोगोंकी प्रवृत्ति थी। जैसा कि अूपर कहा गया है, कामनिक लोग प्राचीन कालसे चली आअी परम्परागत

श्रद्धाका आधार लेकर अीश्वर-भक्तके पीछे लगते है और अुसीको देवता बना देते है। अिसलिअे हमारे देशमे देवता बनना तो आसान है, परन्तु मनुष्य बनना, मानवता प्राप्त करना, मानवीय सद्गुणोसे सम्पन्न होना कठिन है, क्योंकि लोगोंको भी मानवताकी अपेक्षा अपनी कामना पूर्ण करनेवाले अीश्वरकी ही ज्यादा आवश्यकता है। जिस मनुष्यमे हमारी कामना पूर्ण करनेका सामर्थ्य होता है, वह हमें वन्दनीय लगता है। अिसका कारण यह है कि सदाचरणकी अपेक्षा शक्ति पर हमारी श्रद्धा अधिक होती है। अिसलिअे प्रकरणके आरंभमें मैंने कहा है कि केवल शीलवान या सज्जनकी बड़ीसे बड़ी सहिष्णुता और शान्तिको देखकर हमें चमत्कार नहीं लगता। परन्तु किसीकी शक्तिसे कोअी रोगी अच्छा हो जाय, बिना पुत्रवालोंके पुत्र हो जाय, मुकदमेमें जीत हो जाय, विवाह हो जाय या अन्य किसी कठिनाअी अथवा संकटका निवारण होने जैसा लगे, तो अैसे चमत्कार करने हम अुसे दिव्य सामर्थ्यवाला मानते है और अुसके पीछे लगते है।

हमारे देशमें जब कभी दैवी चमत्कार हुअे है, तब अुनके शास्त्रीय और मानसिक कारण खोजनेकी बात किसीको जरा भी नही सूझी, न आज ही सूझती है। कारणके बिना कार्य नही होता, यह जानते हुअे भी कोअी कारणकी खोज नही करता। बल्कि प्रत्येक गूढ मालूम होनेवाली घटनाको अीश्वरीय कर्तृत्व या चमत्कार जैसे नाम देकर अपना महत्त्व और लोगोंका भोलापन ही बढाया गया है। अिस सबके फलस्वरूप लोगोंका अज्ञान बढा है और मजबूत बना है। कुछ अीश्वर बने हुअे महन्त, सम्प्रदाय-प्रवर्तक और गादीधारी दंभी बन गये है। अपनी महत्त्वाकाक्षा अथवा लोगोंकी भ्रामक कल्पना और भोली श्रद्धाकी वजहसे प्राप्त अीश्वरत्वसे अुन्होंने मानवताको और साधकको शोभा न देनेवाले कार्य किये है। दंभी बन जानेके बाद अुन्होंने अपने अीश्वरत्वका जाल फैलाया है। अुन्होंने अपने भक्तोंकी ओरसे अीश्वरीय अैश्वर्य प्राप्त किया है और अपनी निर्विकारता तथा अलिप्तता सिद्ध करनेके लिअे स्वैराचार और स्वच्छन्दताको अपनाकर वे वाममार्गी बन गये है। साधक दशामें सुप्त बनी हुअी अुनकी वासनाये, अिच्छाये और आकाक्षाये अनुकूल स्थिति प्राप्त होते ही जाग्रत हो कर अपना मार्ग निकालने लगी, और अिसके लिअे अैसे लोगोंने अलिप्तता और निर्विकारताका अेक स्वतंत्र तत्त्वज्ञान ही रच डाला। आत्मा प्रकृतिके सारे व्यवहारोंसे

अलिप्त और मुक्त है—अिस तात्त्विक सिद्धान्तके आधार पर अुन्होंने स्वच्छन्दता चलाअी है। भारतके कितने ही भक्तिमार्गी और वेदान्ती साधकोंका अितिहास देखे तो अुनमे से अनेक अिस प्रकार दुर्गतिके मार्ग पर लगे हुअे पाये जायेंगे। अुसके कारण हैं अीश्वर-दर्शन और चमत्कार विषयक भ्रान्त कल्पना, सदाचारकी अपेक्षा शक्ति या चमत्कार पर सामान्य लोगोंकी श्रद्धा तथा लोगोंकी लाचार और निराधार स्थिति। धार्मिक ग्रथोंने अिस श्रद्धाको बढाया है।

अीश्वर-भक्तिके मार्ग पर प्रामाणिकतामे लगे हुअे और टिके हुअे जो लोग हैं, अुनमे से किसीको भी दोषी ठहरानेका मेरा हेतु नही है। कितने ही साधु-सन्तो और अीश्वर-भक्तोने अपना जीवन अत्यन्त पवित्रता और निष्ठासे बिता कर संसारमे धर्म और नीतिकी वृद्धि की हैं। शील और चारित्र्यकी रक्षाके लिअे अुन्होंने बहुत कष्ट अुठाया है, भक्ति, नीति और सदाचारका दुनियामे प्रचार किया है। वे सचमुच धन्य हैं। अिसमे कोअी शंका नही कि अुन्होंने अपने मानव-जीवनको सार्थक बनाया है। हम सब अुन महापुरुषोंके बड़े ऋणी हैं। अुनकी वजहसे दुनियामे किसी हद तक नीति और धर्म टिके हुअे है। अुन्हींके कारण जगत्मे सत्यका अस्तित्व है। अुन्हे हम भक्तिपूर्वक शतशः प्रणाम करते हैं। परन्तु अैसे पुण्यात्मा पुरुषोंको छोडकर सारे समाजका और हमारी भक्ति, अीश्वर-दर्शन, चमत्कार आदिसे संबंध रखनेवाली कल्पनाओंका विचार करें, तो अुस परसे यही दिखाअी देगा कि हम नीतिकी अपेक्षा शक्तिको अधिक महत्त्व देते हैं। शील, सदाचार और भक्तिको छोडकर हम चमत्कारमे फंस जाते हैं। गूढ मालूम होनेवाली बातोंकी खोज और ज्ञानकी अपेक्षा दिव्य कल्पनामे रमे रहना हमे अधिक प्रिय लगता है। धर्मकी अपेक्षा धर्मके नाम पर निर्माण किये हुअे रसोंमे हमारी अधिक रुचि होती है। सत्यकी अपेक्षा काल्पनिक बातें हमें अधिक आनन्दप्रद मालूम होती हैं। ज्ञानकी अपेक्षा भोलापन हमें ज्यादा अच्छा लगता है। अैसा न होता तो हमारे भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्गमे भोलापन और भ्रष्टता कैसे दाखिल हुअी होती? दंभ कहांसे आया होता? परन्तु हममे शोध करने और गुण-दोषको परखनेकी वृत्ति नही है, शुद्ध नीति-निष्ठा नही है। अिन सबका परिणाम हमारे भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग पर हुआ है।

चमत्कारके विषयमें हम केवल श्रद्धालु न रहकर शोधक बने होते, तो अुसके सत्यासत्यका निर्णय आज तक हो चुका होता और अुसके बाद भोलेपनसे अुसके पीछे पड़नेका किसीके लिअे कारण न रह जाता। अीश्वरके दर्शन और मनुष्यरूपमें अुसके अवतारके बारेमें हमने विवेक और तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया होता, तो अुनसे संबंध रखनेवाले सारे भ्रम कभीके उड़ गये होते। फिर निर्विकारता और अलिप्तताके गलत और झूठे आदर्श निर्माण होनेकी गुंजाअिश न रही होती। आत्मा, ब्रह्म और मोक्ष संबंधी परम्परागत कल्पनाकी हमने परीक्षा की होती, तो आज अुनके विषयमें कोअी गूढ़ता न रह जाती, और मानव-जीवनकी सार्थकता किसमें है, अिस मुख्य वस्तुको समझकर अुसके लिअे आवश्यक भौतिक और आध्यात्मिक योग्यता तथा पुरुषार्थ हमने बढ़ाया होता, तो समाजकी आजकी मूर्खता-भरी मान्यताअें, अपनी दैनिक आवश्यकतायें पूरी करनेकी हमारी पंगुता और असमर्थता भी कभीकी नष्ट हो गअी होती।

१०

अीश्वरेच्छा और प्रारब्ध

दुःखको सौम्य करनेका प्रयत्न

मनुष्य यथासंभव दुःखको टालकर सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। परन्तु जब अुसे यह संभव नहीं मालूम होता, तब वह दुःखको कम करनेका और वह भी संभव न हो तो कमसे कम दुःखको भूलनेका प्रयत्न करता है। दुःखद स्थितिमें से मनको निकाल कर स्मृति, तर्क और कल्पना द्वारा पीछेकी या आगेकी — अिहलोककी या परलोककी — किसी कल्पनाके साथ कमसे कम मनसे ही संबंध जोड़े बिना अुसे अच्छा नहीं लगता। दुःखी मनुष्य भूतकालके अपने सुखोंका दूसरोंके सामने वर्णन करते या दूसरोंको अुनका स्मरण कराते पाये जाते हैं। कोअी भावी सुखकी कल्पना करके, कोअी अीश्वरेच्छाको मान देनेका प्रयत्न करके, कोअी यह मानकर कि अीश्वर परीक्षा कर रहा है, कोअी 'ये दिन भी बीत जायेंगे' अिस प्रकार कालचक्रके नियमका आधार लेकर,

कोअी अिस तत्त्व पर श्रद्धा रखकर कि सकटमे ही सद्‌गुणो और चरित्रकी वृद्धि होती है, और कोअी प्रारब्ध-वादका आश्रय लेकर — अिस तरह किसी न किसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने पर आये हुअे दु खको सौम्य बनानेका अथवा कमसे कम अुसे भूलनेका प्रयत्न करता है। दु खमे आगे-पीछेके सुखकी कल्पना या आशा किये बिना स्थिर रहना मनुष्यके लिअे सभव नही है। भूतकालके स्मरणसे या भविष्यकी आशासे, किसी भी जरियेसे, सुखका आनन्द भोगे बिना मनुष्य रह नही सकता। दु खमे भी यथासभव अधिकसे अधिक समय सुखमय कल्पनाओमे बितानेका वह प्रयत्न करता है। दु खका वर्णन करके भी दु खका भार हलका होता है। अिसीलिअे मनुष्य बार-बार अुसका वर्णन करता है। यह सच है कि अुसका प्रयत्न दु खको किसी भी तरह हलका करनेका होता है। गरीबीसे त्रस्त, अन्यायसे दबे हुअे, व्याधियोसे पीडित, आपत्ति, चिन्ता और बुढापेसे घिरे हुअे और ससारके तापत्रयसे जले हुअे — सभी लोग दु खोको भूलना चाहते है। अिस हेतुसे कोअी अुसी स्थितिमे स्वच्छन्दी बनकर कुमार्गासे लग जाते है, कोअी व्यसनो द्वारा अपने दु खोको भूलनेके प्रयत्नमे अधिक दु खी बनते है, कोअी कामनिक क्रियाकाण्डकी दिशामे मुडते है, तो कोअी साधु-वैरागियोके पीछे लगकर रसायन-विद्या सिद्ध करनेके जालमे फस जाते है और अपना सर्वस्व नष्ट कर देते है। और कोअी 'ह्री, ह्रु' जैसे जपके भ्रममे पड जाते है।

अवनतिके कारण और धर्मका बल

हमारे समाजमे मनुष्यके लिअे अपनी अुचित आवश्यकताये और अिच्छाये पूरी करनेके प्रामाणिक मार्ग बहुत ही कम होनेके कारण अथवा दु खके दिन किसी तरह सहनशीलतासे काट देना ही कुछ अवसरो पर धर्म माना गया होनेके कारण समाजकी स्थिति सुधारनेके लिअे जिस पुरुषार्थ और जिन सद्‌गुणोकी आवश्यकता है, अुनकी वृद्धि होनेके बजाय हममे अकर्तृत्व और पगुताकी ही वृद्धि होती गअी है। हमारे समाजमे दुर्बल, असहाय और पंगु मनुष्योमे ही जो विशेष धार्मिकता देखी जाती है, अुसका यही कारण है। स्त्रियोमे और अुनमे भी वैधव्यके कारण जिनका सबंध दु खो और मुसीबतोके साथ सदा जुडा रहता है अैसी स्त्रियोमे जो विशेष धार्मिकता पाअी जाती है, अुसका भी यही कारण है। अिहलोकमे सुखप्राप्ति न होनेके कारण निराश होकर परलोकके सुखकी आशामे

चाहे जैसे धार्मिक व्रतोंका पालन करते रहनेके सिवा जहां दुःखको भूलनेका दूसरा रास्ता ही धर्म या समाजने नहीं रहने दिया, वहां अभागिनी विधवा और करे भी क्या? हमारी अीश्वर-भक्ति प्रायः सांसारिक दुःखों और कठिनाअियोंमें ही निर्माण हुअी मालूम होती है। सुखकी निराशा और व्यावहारिक दुर्बलतामें अुत्पन्न हुआ वैराग्य अीश्वर-भक्तिके कारण मान-प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगनेके बाद — अनुकूल परिस्थिति पैदा होनेके बाद — यदि सुख-सुविधाओं और भोग-विलासके जीवनका रूप ले ले तो अिसमें क्या आश्चर्य है? जिस अीश्वर-भक्तिके साथ ज्ञान, जिज्ञासा और निष्ठाका संबंध नहीं है, वह भक्ति अन्त तक किस आधार पर टिकी रह सकती है? अिसलिअे धार्मिकताके नाम पर हमारे समाजमें अनेक व्रतों और अुपवासोंकी परम्परा चली आअी है, फिर भी अुससे हममें संयम, त्याग, अुदारता, दया आदि धर्म-भावनायें बढ़ी नहीं। अुनके कारण व्यक्तिके जीवनमें प्रत्यक्ष संतोष और शान्ति नहीं दिखाअी देती। क्योंकि भाविकोंके अुस समयके चित्तकी परीक्षा करनेसे पता चलता है कि अिन व्रतों और धार्मिक कर्मकाण्डके पीछे अिहलोक अथवा परलोककी भोगेच्छा और सुखेच्छा ही रहती है।

सच तो यह है कि सांसारिक सुखकी अिच्छा ही जिनके मनमें रहती है, परन्तु अुसकी प्राप्तिका अुचित मार्ग न मिलनेके कारण जो अीश्वर-भक्तिकी ओर मुड़ते हैं, वे अनुकूलता प्राप्त होने पर सुखकी आशासे सहज ही दंभी बन जाते हैं। सांसारिक दुःखोंका नाश करनेके लिअे आवश्यक अुचित मार्गका अभाव, अीश्वर-भक्तिसे होनेवाले दुःखनाशके, मुक्तिके और अुसकी वजहसे प्राप्त होनेवाले आनन्दकी अतिशयताके काल्पनिक वर्णन, गृहस्थाश्रमी सज्जनकी अपेक्षा निवृत्ति-परायण व्यक्तिको समाजमें मिलनेवाली प्रतिष्ठा आदि अनेक कारणोंसे अेक ओर भ्रम, अज्ञान, भोलापन और दूसरी ओर दंभ, कपट, धूर्तता आदि दोष और दुर्गुण समाजमें बढ़ते गये हैं। अुचित आवश्यकतायें पूरी करनेके लिअे आवश्यक अुचित मार्ग और अुद्योग-धंधे समाजमें अुपलब्ध हों, तो लोगोंमें सद्गुणों और पुरुषार्थका सहज ही विकास होता है। अिसके अभावमें झूठे धार्मिक कर्मकाण्ड, भ्रामक और काल्पनिक भक्ति, भीतरसे भोगेच्छा और सुखेच्छावाला वैराग्य, दंभ, धूर्तता आदिकी ही वृद्धि समाजमें होती है। अुद्योगी और पुरुषार्थी समाजमें

परस्पर द्वेष और मत्सर अधिक नही होता। दूसरेकी सुखमय स्थिति हम प्राप्त करना चाहते है, परन्तु वह जब प्राप्त नही होती अथवा अुसे प्राप्त करना सभव नही होता, तब अुसके लिअे हमारे मनमे द्वेष पैदा होता है। परन्तु अुद्यम और प्रयत्नसे हम भी सुखी हो सकते है, यह विश्वास रखने जैसी परिस्थितिमे द्वेष पैदा नही होता। जिस समाजमे सुखी बननेके मार्ग ही खुले नही होते, धार्मिक, सामाजिक आदि मान्यताओके कारण अैसी बातो पर प्रतिबध लगा होता है, वही परस्पर द्वेष और मत्सर अधिक दिखाअी देता है। अुसी समाजमे दूसरोका सुख देखकर अीर्ष्या करनेकी वृत्ति बहुत बढी हुअी होती है। ये सब बाते हमारी अवनतिके कारण है और अिसीलिअे आज तक अनेक प्रकारसे हमारी अवनति होती आअी है। अिस पर विचार करके हमे अिस स्थितिको बदलनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रामाणिक रूपमे अुपयोगी कार्य और परिश्रम करने पर प्रत्येक मनुष्यकी अुचित आवश्यकताये और अिच्छाये पूरी हो सके, अैसी व्यवस्था समाजमे पैदा करनेका हमे प्रयत्न करना चाहिये। अुद्यम करके सुखी होनेमे बाधक बननेवाली धार्मिक और सामाजिक कल्पनाओ तथा रीति-रिवाजोका हमे त्याग कर देना चाहिये। अिसके बिना आज धर्मके नाम पर जो पाखण्ड, भक्तिके नाम पर जो अकर्तृत्व और पगुता, अीश्वरके नाम पर जो दभ तथा सयमके निमित्तसे जो कामना और अतृप्ति आदि दुर्गुणोकी वृद्धि हमारे समाजमे हुअी है अुसका नाश नही होगा। और समाज अिस दुर्गतिसे बाहर नही निकल सकेगा। कैसे भी क्रियाकाण्डको हम धर्म, परावलम्बनको भक्ति और श्रद्धा, अपात्रताको वैराग्य और दुर्बलताको निवृत्ति समझ लेते है। यह सारी परिस्थिति बदलनी चाहिये। ये सारे दोष हमे अपने भीतरसे निकाल देने चाहिये। हमे दृढतापूर्वक मानना चाहिये कि धर्म मनुष्यको कभी पगु न बनाकर समर्थ बनाता है, अीश्वर-निष्ठा अुसमे दुर्बलता अुत्पन्न न करके बल अुत्पन्न करती है, और सयम तथा वैराग्यसे दीनता या कामनाकी वृद्धि न होकर मनुष्य स्वाधीन बनता है तथा शान्ति और प्रसन्नताका अनुभव करता है। अत यह माननेमे कोअी हर्ज नही कि जहा धर्म, भक्ति, सयम, वैराग्य आदिके अिससे अुलटे परिणाम आये मालूम हो, वहा वास्तवमे धर्म, भक्ति, सयम, वैराग्य नही बल्कि अज्ञान, भ्रम, दुर्बलता और दभ ही होना चाहिये।

'औीश्वरेच्छा', 'प्रारब्ध' आदि बाते तत्त्वत सत्य है या नही, अिसकी निश्चित शोध अभी तक हुअी नही है, और आगे भी कभी होगी या नही अिस विषयमे शका ही है। परन्तु अिन शब्दोका अुपयोग मनुष्य कब करता है, कैसे अवसर पर करता है और किस प्रकार करता है, तथा अिन शब्दोसे या अिस प्रकारकी कल्पना, भावना, श्रद्धा और मान्यतासे वह क्या प्राप्त करना चाहता है, अिसकी जाच करे तो पता चल सकता है कि

औीश्वरेच्छा और प्रारब्धकी कल्पनाओका सामाजिक स्थितिसे सबध

अुस अुस अवसर पर सामान्यत अुसकी मनोवृत्ति कैसी होती है। जब शक्तिके बाहर दीर्घ प्रयत्न करने पर भी मनके विरुद्ध अनिष्ट परिणाम आते है, तब अवसर और प्रयत्नकी छोटी-बडी सारी तफसीलो और प्रकारो पर बार-बार ध्यान देने और विचार करने पर भी असफलताके कारण समझमे नही आते और मन व्याकुल बना रहता है। अैसी हताशा और निरुत्साहपूर्ण मनोदशामे 'औीश्वरेच्छा' और 'प्रारब्ध' की कल्पनाये मनुष्यको सूझती है। अनिष्ट परिणाम आने पर 'औीश्वरकी अिच्छा अैसी ही थी', 'प्रारब्ध ही अैसा था' अिन कल्पनाओसे मनको यह समझा लेनेके बाद कि यह परिणाम टल ही नही सकता था, मनुष्यका दुख या असतोष कुछ हद तक हलका होता है। अपने और दूसरे लोगोके जीवनकी अैसी असफलताके अवसर पर 'औीश्वरेच्छा' और 'प्रारब्ध' की कल्पनाओके कारण हताश और दुखी मनको जो आधार, आश्वासन और धैर्य मिलता है, अुस परसे अिन कल्पनाओको सिद्धान्तका स्वरूप प्राप्त हुआ है। दुखी और निराश मन शान्त होनेके लिअे किसी महान वस्तुका आधार खोजता है। 'औीश्वरेच्छा' और 'प्रारब्ध' की कल्पनाये यदि मनुष्यको किसी अनुभवके बाद सूझी हो, तो भी निराशाकी स्थितिमे ही मनुष्य अधिकतर अुनका अुपयोग करता आया है। सुख-सपत्तिमे या वैभवमे अिन कल्पनाओका श्रद्धापूर्वक स्मरण करके औीश्वरके प्रति कृतज्ञताका भाव और अपने भीतर निरहकारताका भाव बढानेमे शायद ही कभी अिनका अुपयोग किया जाता है।

प्रकृतिके स्वाभाविक स्थूल और सूक्ष्म धर्मो तथा शक्तियो, मनुष्योपयोगी कलाओ, विद्याओ, ज्ञान तथा मनुष्य-मनुष्यके बीच अुचित सहकार,

प्रेम, सद्भावना, सद्गुण आदि अनेक बातो पर मानव-जीवन चलता है। जो मानव-समूह प्रकृतिके स्वाभाविक धर्मों और शक्तियोंको अपने अनुकूल बनाकर, अुपयुक्त कलाओं और विद्याओंका विकास करे तथा परस्पर पालनेके नियम, व्यवहार आदि सबके लिअे सुखदायी हों अैसी समाज-रचना करके चलता है, तथा जो मानव-समूह किसी अनिष्टके मालूम होते ही प्राकृतिक धर्मोंकी विशेष सूक्ष्म खोज करके और अपनी समाज-रचनामें, सामाजिक रीति-रिवाजोंमें तथा धार्मिक कल्पनाओं और श्रद्धामें योग्य परि-वर्तन करके अुस अनिष्टका नाश करनेका प्रयत्न करता है, अुसे सुखप्राप्तिके लिअे, दुःखनाशके लिअे या दुःखको भूलनेके लिअे अीश्वर, पारलौकिक कल्पनाओ पर आधार रखनेवाले धर्म, अीश्वरेच्छा, प्रारब्ध आदिका आधार प्रायः नही लेना पडता। जिस समाजमे अपनी अुचित आवश्यकताये और अिच्छाये प्रामाणिक मार्गसे पूर्ण करनेकी जितनी अधिक अशक्यता होगी, दुःखका नाश करनेके आवश्यक भौतिक साधनोका जितना अधिक अभाव होगा, परस्पर सहायता करनेकी वृत्ति जितनी कम होगी और आसानीसे दुःखका नाश करनेके लिअे सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाज तथा धर्मकी मान्यताये जितनी अधिक प्रतिबन्धक होगी, अुस समाजमे 'अीश्वरेच्छा', 'प्रारब्ध' आदि कल्पनाओका अुपयोग करके दुःख मिटानेके प्रयत्न भी अुतने ही अधिक होगे। दूसरे पहलूसे विचार करने पर लगभग निश्चित रूपमे अैसा लगता है कि मनुष्यने अपनी बुद्धि चाहे जितनी विक-सित की हो और समाज-रचना चाहे जितनी अुत्तम बनाअी हो, तो भी यह संभव नही मालूम होता कि मानव-जातिके सारे दुःखोका अन्त आ जायगा। कितने ही दुःख मनुष्यको विवेक, सहिष्णुता, ज्ञान, संयम आदिसे और अन्तमे 'अीश्वरेच्छा' तथा 'प्रारब्ध' की कल्पनासे ही शान्त करने होंगे। भौतिक शास्त्रमे और समाज-रचना करनेमे मनुष्यके आजकी अपेक्षा अनेक गुना बुद्धिमान बन जाने पर 'अीश्वरेच्छा' और 'प्रारब्ध' शब्दोका, अिन कल्पनाओका कदाचित् नाश हो जाय, परन्तु फिर भी कुछ दुःखोमे अुसे विवेक, ज्ञान और सहिष्णुताका अुपयोग करके अपना मन शान्त करना पडेगा, तो कुछ अटल और असह्य दुःखोको अुस अुस अवसर पर किसी कल्पना, श्रद्धा अथवा अदृश्य तत्त्व पर या भावी पीढीके सुखकी आशा पर विश्वास रखकर हलका करना या भूलना पडेगा। क्योकि अमर्यादित विश्वकी

तुलनामें, अुसकी शक्तिकी अपारता और सूक्ष्मताकी तुलनामें, मानवकी कितनी ही विकसित शक्ति और बुद्धि भी आखिर मर्यादित और अपूर्ण ही रहेगी। अुसके ज्ञानकी अपेक्षा अुसका अज्ञान ही सदा अपार रहनेवाला है। अैसा होते हुअे भी अपने दैनिक जीवनको यथासंभव सुविधापूर्ण, सुखद और दुःख-रहित बनाना कुछ हद तक मनुष्यके हाथमें है। अुसमें भी असफलता या निराशाके अवसर अुपस्थित होने पर चित्तको शान्त करनेके लिअे अीश्वरेच्छा और प्रारब्धकी कल्पनाका सहारा लिया जाय तो कोअी दोष नहीं है। प्रयत्न-वादी मनुष्य भी प्रयत्नके अन्तमें सफलता न मिलने पर अिन कल्पनाओंका आधार लेकर अपने चित्तको शान्त करनेका प्रयत्न करता है। परन्तु वही मनुष्य अुस शान्त मन स्थितिमें आगेका अुपाय भी खोजने लगता है। किसी समय अुसे अुपाय मिल जाता है, किसी समय नहीं भी मिलता। अुपाय न मिलने पर भी अुस शान्त मन स्थितिमें अुसे विवेक सूझता है और वह स्थिर बनता है, जब कि जड और पुरुषार्थहीन मनुष्य अपनी जडता और पुरुषार्थ-हीनताके कारण अुत्पन्न हुअे दुःखके मौके पर अीश्वरेच्छा और प्रारब्ध पर रही अपनी श्रद्धाका आधार लेकर पहलेसे अधिक जड और पुरुषार्थहीन बनता जाता है। प्रयत्नवादी मनुष्यको बार-बार अिस कल्पनाका अुपयोग नहीं करना पडता, परन्तु जड, पुरुषार्थहीन और प्रयत्नहीन मनुष्यका तो सारा जीवन ही अिस कल्पनाके आधार पर चलता है। जीवनमें किसी विशेष अवसर पर अुपयोगमें ली जाने लायक वस्तुका यदि रोज-रोज अुपयोग करना पडे, कभी-कभी ली जाने लायक दवा या अिजेक्शनका प्रतिदिन अुपयोग करना पडे तो अुसे क्या कहा जायगा? अिसी प्रकार जिस समाजमें सामान्य जनताको समय-समय पर किसी भी कल्पनाका अुपयोग करके अुसके आधार पर अपना कठिन जीवन बिताना पडता हो और अैसे अुपायसे अपना दुःख भूलना पडता हो, अुस समाजके विषयमें क्या समझा जाय? स्वास्थ्यकी दृष्टिसे विचार करने पर लगता है कि कोअी मनुष्य अितनी नीरोगता भले सिद्ध न कर पाये कि दवाअीका अुपयोग अुसे कभी करना ही न पडे, फिर भी अितनी नीरोगता तो अुसे प्राप्त करनी ही चाहिये कि दवाअीका अुपयोग जीवनमें कमसे कम करना पडे। यही नियम हमें मानवीय दुःखों और अीश्वरेच्छा, प्रारब्ध आदि कल्पनाओंसे अुनका शमन करनेके विषयमें ध्यानमें रखना चाहिये।

जीवन-सूत्रको पहचाननेकी पद्धति

'ओश्वरेच्छा या प्रारब्धानुसार सब कुछ होता है', 'जिन्दगी दो दिनकी है', 'किसीकी आशा रखना व्यर्थ है', 'दुनियामें कोओ किसीका नहीं', 'ये दिन भी चले जायेंगे', 'शरीर रोगका भण्डार है', 'मौत किसीकी टलती है?', 'जगत् मायाका बाजार है'—आदि अुद्गार मनुष्यके मुहसे प्रसंगके अनुसार हृदयपूर्वक निकलते हैं। अिन अुद्गारोंमें ज्ञान भरा है, अैसा आभास होनेके कारण कोओ कोओ अुन्हींको जीवनका महान सिद्धान्त समझते हैं और जान-बूझकर अुदासीनतासे जीवन बितानेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि अैसे अुद्गार तात्त्विक दृष्टिसे सच्चे हों या न हों, फिर भी अुन्हें जीवनका सूत्र बनाकर अुनके अनुसार नित्यका जीवन चलानेका प्रयत्न करना गलत है। निराश और निरुत्साह बने हुअे, व्याधिग्रस्त, गरीबीसे दुःखी, लोगोंके छल-कपटके शिकार बने हुअे, मौतके किनारे लगे हुअे, किसी न किसी दुःखसे भग्न-हृदय बने हुअे तथा जिनका जीवन लगभग असफल सिद्ध हो चुका है अैसे व्यक्तियोंके मुहसे अुस अुस स्थितिमें निकले हुअे अुद्गारोंको जीवनका सिद्धान्त मानकर सारे मानव-जीवनके विषयमें राय बनाना और अुसे अपने जीवनका ध्येय ठहराना सर्वथा अनुचित है। अेकांगी सत्यको सम्पूर्ण सत्य समझना सदा गलत ही माना जायगा। अिन अुद्गारोंके साथ ही मानव-जातिके शुभाकांक्षी, अुसकी अुन्नतिके विषयमें आशा रखनेवाले, प्रयत्नशील, विवेकी तथा जीवनकी सफलताके विषयमें जिनके हृदयमें धन्यताके भाव अुठते हैं अैसे ओश्वर-निष्ठ और पुरुषार्थी व्यक्तियोंकी मानव-जातिके विषयमें और जगत्के विषयमें प्राप्त अनुभवसे बनी हुआी जो रायें हैं अुनका भी विचार करना जरूरी है। किसी भी वचनको तात्त्विक सिद्धान्तके रूपमें सारी दृष्टियोंसे ग्राह्य समझनेके पूर्व वह वचन किसके मुहसे, कौनसे अवसर पर, कैसी मानसिक और बाह्य परिस्थितिमें तथा जीवनके विषयमें कितने गाढ, विशाल अथवा संकुचित अनुभवोंके आधार पर निकला है, अिसका हमें विचार करना चाहिये। अैसे वचन किसीके मुहसे क्यों निकले, अिसका कारण भी हमें खोजना चाहिये। अुन वचनोंके रूढ बननेके कारणोंकी भी जांच करनी चाहिये। अिस प्रकार सब दृष्टियोंसे खोज करनेके पश्चात् यदि अुन वचनोंकी सम्पूर्ण सत्यता हमारे गले अुतरे, तो ही अुन्हें जीवन-सिद्धान्तके रूपमें

मानना अुचित होगा। अैसा न करके यदि हम अेकागी सत्यको ही सम्पूर्ण सत्य समझेगे, तो सभव है अुससे हममे भ्रामक कल्पनाकी ही वृद्धि होती रहे और समाज जिस तरह आज तक अवनत होता आया है, अुसी तरह आगे भी अवनत होता रहे।

अिस सारी अवनतिमे और तत्सम्बन्धी भविष्यके भयसे मुक्त होना हो, तो गलत धार्मिक और सामाजिक कल्पनाये हमे छोड देनी चाहिये।

गलत धार्मिक और सामाजिक कल्पनाओका त्याग

अुचित और आवश्यक जरूरतो व अिच्छाओका विचार करके अुन्हे पूर्ण करनेके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ, ज्ञान, सद्गुण, विद्याये कलाअे आदि हमे प्राप्त करना चाहिये। हमारे दु खोके कारणरूप अज्ञान, मोह, आसक्ति, लोलुपता, भ्रम, दुर्बलता, असयम, स्वार्थ आदि दोष हमे दूर करने चाहिये। वैराग्यकी झूठी कल्पनामे पडकर सुखमात्रको हमे त्याज्य नही मानना चाहिये। हमारे सयममे भोगकी अिच्छा नही होनी चाहिये। हमारी औश्वर-भक्तिमे कामना नही, निष्ठा होनी चाहिये। सयमसे स्वभावत हममे सयम-शीलता और सयम-शक्ति बढती रहनी चाहिये। वह हमारा स्वभाव बन जानी चाहिये और अुसके साथ ही हममे शाति और प्रसन्नता पैदा होनी चाहिये। जीवनका ध्येय हमे भलीभाति समझ लेना चाहिये। सुखप्राप्ति और दु खनाशके लिअे हमे विवेकयुक्त पुरुषार्थ बढाना चाहिये। वैयक्तिक सुख और स्वार्थकी कल्पनाका त्याग करके हमे सामुदायिक और व्यापक सुख, लाभ और हितको महत्त्व प्रदान करना चाहिये। जीवन-पर्यन्त मुसीबतें, दु ख, अपमान, गरीबी और विडम्बना सहना सिखलानेवाले तत्त्वज्ञानको हमे त्याज्य मानना चाहिये।

११

मनुष्य और सेवाधर्म

हम मानते हैं कि मनुष्य अपने बौद्धिक बलसे जगत्में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ है। परन्तु यह पूर्णतया सही नही है। थोडा विचार करनेसे हमारे खयालमें आ सकता है कि श्रेष्ठता अुसे केवल बौद्धिक बलसे प्राप्त नही हुअी है; अुसका कारण मनुष्यके अन्य कअी सद्‌गुण है। बौद्धिक विकासके साथ यदि मनुष्यका मानसिक विकास न हुआ होता, तो अुसमे आजकी मानवता न दिखाअी देती, वह अेक बुद्धिमान पशु बन गया होता और बुद्धिकी वृद्धिके साथ अुसमे केवल पशुताकी वृद्धि ही दिखाअी देती। मनुष्यमे मानवता अुत्पन्न होनेमें जो सद्‌गुण और सद्‌वृत्तिया कारणभूत बनी है, अुनमे सेवावृत्तिका बहुत बडा महत्त्व समझना चाहिये। प्रेम, वात्सल्य, माता-पिताका भाव, करुणा, मैत्री, परोपकार आदि सारे भावों और भावनाओका सेवावृत्तिके साथ निकटका सम्बन्ध है। अिस सेवावृत्तिमे से ही सेवाधर्मका अुदय हुआ है। अिस धर्मके ही कारण वात्सल्यका महत्त्व है। मातृ-पितृ-भावका सम्बन्ध वात्सल्यके साथ ही है; अितना ही नही, वात्सल्य ही माता-पिताकी सम्पत्ति है और वही अुनकी वास्तविक शक्ति है। अिस वात्सल्यसे ही अुनकी सेवावृत्ति प्रकट होती है। अुस वात्सल्य और अुस सेवावृत्तिके कारण भावी पीढीका पोषण, संगोपन और सवर्धन होता है। वात्सल्यके द्वारा किसी भी माताको स्वय कष्ट, मुसीबते और दुःख सहन करके अपने बालकोको सुखी बनानेकी शिक्षा मिलती है। सेवाकी अत्यंत अुत्कट भावना और अुसके अनुरूप कार्य अिस वात्सल्यमे से ही प्रकट होते है।

वात्सल्यका महत्त्व

प्रत्येक मनुष्यको सेवाका प्रथम लाभ अुसकी मातासे मिलता है। माताके हृदयके वात्सल्यसे ही अुसकी वृद्धि होती है। पैदा हुआ बालक अपनी मातासे अनेक प्रकारकी सेवा लेते-लेते मनुष्य बनता है। अुसका जीवन पूरी तरह माता पर अवलबित होता है। बाल्यकालमे माताका वात्सल्य और सेवावृत्ति ही अुनके जीवनका मुख्य आधार होती है। अिस दृष्टिसे

मातृ-अृण

वात्सल्यका विचार किया जाय तो हर तरहसे और हर पहलूसे असमर्थ और पराधीन स्थितिमें से निकाल कर माता ही बालकको धीरे-धीरे समर्थ और स्वाधीन बनाती है। अिसके लिअे अुसे बालककी हर प्रकारकी सेवा करनी पड़ती है। रात-दिन अुसे बालककी ओर ही सारा ध्यान लगाना पड़ता है। यह सब वात्सल्यके बिना नहीं हो सकता। प्रेमके बिना वात्सल्य नहीं टिक सकता। और अुत्कट भावनाके बिना प्रेम नहीं टिक सकता। अिस अुत्कटता, प्रेम, सेवावृत्ति और वात्सल्यको यदि मातासे अलग कर लें, तो मातृत्वके रूपमें अुसके पास बाकी क्या रह जायगा? वह निरी स्त्री ही रह जायगी। जीवनकी दृष्टिसे केवल अुसके स्त्रीरूपका क्या मूल्य है?

सेवावृत्तिका विकास

अिस दृष्टिसे सोचें तो कहना पड़ेगा कि स्त्रियोंमें पाया जानेवाला मातृभाव और सेवाभाव सारे जगत्‌की सेवा करता है। अुनकी अिन भावनाओंके कारण जगत्‌का पालन, पोषण, संगोपन और संवर्धन होता है। अुनकी सेवा-भावनाके कारण ही प्रत्येक पीढ़ीमें मानवता आती है। जगत्‌में आज तक जो बड़े-बड़े ज्ञानी-विज्ञानी, बड़े राजपुरुष, राजनीतिज्ञ, योद्धा, धर्म-संस्थापक, पैगम्बर अथवा अवतारी माने गये व्यक्ति हुअे हैं, वे सब अपनी माताकी सेवावृत्तिका और वात्सल्यका लाभ अुठाते-अुठाते ही बड़े बने हैं। और आधुनिक समयके अैसे बड़े पुरुष भी अिस विषयमें अपनी माताओंके ही ॠणी हैं। जन्मसे जिसकी माका अवसान हो जाता है, अुसे भी अन्य किसी स्त्रीके मातृत्वका आधार मिल जाता है। किसी न किसीकी सेवा-भावनासे ही अुसका पालन-पोषण होता है। अिस दृष्टिसे हममें से प्रत्येक स्त्री-पुरुष, मनुष्यमात्र, मातृत्वका ही ॠणी है। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों अुसे अपने पिता, भाअी, बहन तथा निकटके सगे-सम्बन्धियोंके वात्सल्य, प्रेम और सेवाभावका लाभ मिलने लगता है। अिसके बिना अुसका जीवन चल नहीं सकता। मनुष्य जैसे-जैसे बड़ा होता है, जैसे-जैसे अुसके जीवनकी आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं और अुसका सम्बन्ध व्यापक होता जाता है, वैसे-वैसे माताके सिवा अन्य अलग अलग व्यक्तियोंके प्रेम, सहानुभूति, सेवा और सहकारकी भी अुसे जरूरत पड़ती है। अिस प्रकार अुसके जीवनके लिअे दूसरोंकी सद्‌भावनाओंकी भी आवश्यकता मालूम होने लगती है। अिस क्रमसे बढ़ते बढ़ते मनुष्य जब कुछ समर्थ हो जाता है, तब अेक ओर वह

आदि गुणो द्वारा प्रकट होगा। किसी जगह वह पति-पत्नीके जीवनमे ओतप्रोत हुआ दिखाओी देगा। अिस प्रकार अनुभवसे पता चलेगा कि सारी मानव-जाति सेवा-भावनाके आधार पर ही जीती है। अिस भावनाकी शुद्धि और वृद्धिके लिअे मानव-जीवनमे सेवाधर्मका महत्त्व समझना अत्यंत आवश्यक है।

अिस प्रकरणके आरभमे ही कहा गया है कि दूसरे प्राणियोकी अपेक्षा मनुष्यमे बुद्धि अधिक है, परन्तु अुस बुद्धिके बल पर ही वह आजकी श्रेष्ठताको नही पहुचा है। वेशक, अुसकी वुद्धि कुछ अश तक अिस श्रेष्ठताका कारण है। परन्तु सद्‌गुणोके रूपमे बहुत हद तक व्यापक बने हुअे सेवाभावकी वृद्धि मनुष्यमे न हुअी होती, तो आजकी श्रेष्ठता प्राप्त करना अुसके लिअे कभी सभव नही होता। मनुष्य जिस तरह वुद्धि-प्रधान प्राणी है, अुसी तरह वह सामाजिक प्राणी भी है। समाजके विना अुसका कोअी अस्तित्व नही है। 'अस्तित्व नही है' से मेरा मतलब है कि जिस सास्कृतिक अवस्थामे आज वह है वह अवस्था अुसके लिअे सभव नही होती। अुस सास्कृतिक अवस्थाकी वृद्धि सेवाधर्मकी निष्ठाके बिना नही हो सकती। अैसी निष्ठा निर्माण करने और अुसे दृढ़ बनानेका प्रयत्न आज तक अनेक महापुरुषोने किया है। देश, काल और अवसरके अनुसार सेवा और सद्‌गुणोके महत्त्वका वर्णन अुन्होने अलग-अलग ढगसे किया है। त्यागके बिना सद्‌गुणोकी वृद्धि नही होती; अितना ही नही, अुसके बिना सद्‌गुण टिक ही नही सकते। अिसलिअे अुन महापुरुषोने बडे आग्रहके साथ त्यागका अुपदेश दिया है। अेक ओर त्याग और दूसरी ओर किसीका हित — ये दोनो बाते साधनेकी शक्ति प्रत्येक सद्‌गुणमे होनी चाहिये। सद्‌गुणमे यह शक्ति हो तो ही वह आत्म-कल्याणकारी और परोपकारी बनकर प्रभावशाली सिद्ध होता है। परहितकारी कार्य करते समय भी यदि हमारे चित्तमे सेवाभाव न हो, तो अुस कार्य द्वारा हमारी अुन्नति होनेका विश्वास नही किया जा सकता। क्योकि अुससे किसी समय हमारे मनमे अहकार अुत्पन्न हो सकता है। कभी-कभी वह काम हम लाचारीमे करते है और अिसलिअे हमारे मनका झुकाव अुसे टालनेकी ओर होता है; और अिस सम्बन्धमे हमसे कुछ भी करते न बने तो वह कार्य हममे जड़ता अथवा गुलामीकी वृत्ति पैदा करता है। अत किसी भी कार्यमे आत्म-कल्याण और परहित जैसे दो अुद्देश्य और सामर्थ्य हो, तो ही अुससे हमारी और

दूसरोंकी अुन्नति हो सकती है। हमारे कार्यमें, कर्ममें, अैसा सामर्थ्य अुत्पन्न हो, अिसके लिअे हमारे मनमें सेवाभाव होना चाहिये। और यह भाव सदा बना रहे अिसके लिअे सेवाधर्म पर हमारी निष्ठा होना आवश्यक है।

हमारे कर्म अिस निष्ठासे होते रहें, तो हममें मानवताका विकास होता रहेगा और हमारा समाज मानव-समाजके रूपमें संसारमें टिका रहेगा।

त्याग और कर्तव्य-निष्ठा

योग्य कर्मके बिना जीवन चल ही नहीं सकता। शुद्ध विवेकके बिना अुचित और अनुचित कर्मके बीच हम भेद नहीं कर सकेंगे। सेवाधर्मके बिना केवल कर्मसे आत्म-कल्याण और परहित सिद्ध नहीं होगा। हम सेवाधर्मका पालन करें तो ही हमारे बीच सहकार रहेगा। हम सब अेक-दूसरेके लिअे अुदात्त भावनासे कष्ट न सहें, तो हममें प्रेम, विश्वास आदि भाव न तो अुत्पन्न होंगे और न बढ़ेंगे। प्रेम, विश्वास आदि भावोंके बिना अैक्यकी स्थापना नहीं हो सकती। और अैक्यके अभावमें समाजका टिकना शक्य नहीं है। त्यागके बिना हममें अुदात्तता नहीं आ सकती। अुदात्तताके बिना हम अेक-दूसरेके लिअे सन्तोषपूर्वक थोड़ा-बहुत कष्ट सहन नहीं कर सकते। संयमके अभावमें सच्चा त्याग नहीं सधेगा। और सच्चे त्यागके बिना संतोषका अनुभव नहीं होगा। संतोषके बिना आत्म-कल्याण संभव नहीं है। ये सब गुण सेवाधर्म और कर्तव्य पर निष्ठा रहे बिना सिद्ध नहीं किये जा सकते। ये सब परस्पर अैसे सम्बद्ध हैं कि अिन्हें अेक-दूसरेसे अलग नहीं माना जा सकता।

पुत्रके लिअे हर तरहसे कष्ट अुठाना माता-पिताको कौन सिखाता है? देशके लिअे प्राण अर्पण करनेवाले, अुसके लिअे सदा दुःख भोगनेवाले, धर्मके लिअे बलिदान देनेवाले, परिवारमें अेक-दूसरेके लिअे संतोषके साथ कष्ट सहनेवाले — अिन सबको अपनी निष्ठासे ही अैसा करनेका सामर्थ्य प्राप्त होता है। हमारा मानव-जीवन अिस निष्ठा पर ही चलता है। अपनी व्यक्तिगत कठिनाअियों, अपने व्यक्तिगत दुःखोंकी परवाह न करके हम अेक-दूसरेके लिअे संतोषपूर्वक जो कष्ट सहते हैं, अुसीके आधार पर हम सबका जीवन चलता है। अिस कष्ट-सहनमें जहां बाधा आती है, जहां केवल स्वार्थवृत्तिसे हम चलते हैं, वहां मानवताका विकास रुक जाता है। यदि हम चाहते हों कि यह विकास सदा होता रहे, तो हमें अपने प्रत्येक कर्ममें कर्तव्य-निष्ठा

और सेवा-भावना रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। जन्मसे लेकर जीवनके अन्त तक मानव-जातिके सद्‌गुणो पर ही हमारे जीवनका आधार होता है। मानव-जातिमे आज जो कुछ सुख, शांति, सन्तोष, आनन्द और अुत्साह दिखाअी देता है, अुसका कारण हमारी मानवता अर्थात् हमारे सद्‌गुण है, और जो भी दुःख, आपत्ति और अनर्थ दिखाअी देता है, अुनका कारण हमारे दुर्गुण है। यह सब हमारे सद्‌गुणो और दुर्गुणो, सेवावृत्ति और स्वार्थ, धर्म और अधर्मका ही परिणाम है। यह बात ध्यानमे रखकर हम सबको अपने जीवनमे सद्‌गुणोको, सेवाधर्मको महत्त्व प्रदान करना चाहिये। मानवताको अपने जीवनका आदर्श समझना चाहिये। अिस बात पर ध्यान देगे तो हम सब अवश्य सुखी होगे।

१२
प्रतिष्ठाका मोह

प्रत्येक मोह मनुष्यकी अुन्नतिमे बाधक और अवनतिका कारण बनता है। अुसमे भी मान और प्रतिष्ठाके मोहकी विशेषता यह है कि अुससे होनेवाली अवनति मनुष्यके ध्यानमे जल्दी नही आती। अिसलिअे साधकको अिस विषयमे अधिक सावधान रहना चाहिये। अिस मोहसे अलिप्त रहना हो तो आपको अपने ध्येयका सतत ध्यान रखना चाहिये। आप देशकार्यमे, राष्ट्रकार्यमे या समाज-सेवामे लगे हो, तो आपकी सेवा-वृत्तिके कारण, आपके सद्‌गुणोके कारण आपका गौरव करनेकी, आपका मान-सम्मान करनेकी लोगोको सहज ही अिच्छा हो सकती है। परन्तु अैसे अवसरो पर अपना आदर न कराकर, लोगोका सम्मान स्वीकार न करके आपको अुन्हे आग्रहपूर्वक समझाना चाहिये कि वे आपके सदाचरणका अनुकरण करे, अुसीमे आपका गौरव और मान-सम्मान है। लोगोके मनमे आपके प्रति सच्चा आदरभाव होगा तो वे आपकी बात अवश्य सुनेगे। अुनके मनमे आपके प्रति जो सद्‌भाव है, अुसका अुपयोग आप अुनके कल्याणके लिअे करे अिसीमे अुनकी सच्ची सेवा है। यदि आपके मनमे लोगोके लिअे सच्चा प्रेम जाग्रत होगा, आप निरहंकारी होगे, अपनी अुन्नतिके लिअे सदा

जाग्रत रहते होंगे और आपमें कार्य-दक्षता होगी, तो ही आप अैसा कर सकेंगे। किन्तु जिन सद्गुणोंका आपमें अभाव हुआ, तो मान-प्रतिष्ठा और कीर्तिके मोहमें आप अधिकाधिक फंसते जायेंगे। समय बीतने पर यह आपका व्यसन बन जायगा। मान-प्रतिष्ठाके बिना सत्कर्म करनेकी आपकी वृद्धि नष्ट हो जायगी। जिस प्रकार व्यसनी मनुष्यमें नशीली वस्तु न मिलने पर कार्य करनेका अुत्साह नहीं आता, वैसी ही आपकी भी स्थिति होगी। प्रत्येक अच्छा कर्म करते समय आप अिस बातके लिअे अुत्सुक रहेंगे कि लोग आपकी प्रशंसा करें। प्रशंसा न मिलने पर आपको दुःख होगा। सत्कर्म पर रही आपकी श्रद्धा नष्ट हो जायगी और मानवताकी आपकी अुपासना छूट जायगी। कोअी आपका आदर न करे तो आपको अपमान होने जैसा दुःख होगा। अैसे मनुष्योंके लिअे आपके मनमें क्रोध या तिरस्कार भी अुत्पन्न हो सकता है। यह कहना कठिन है कि मान-सम्मान पानेकी गलत आदत आपको किस हद तक अवनतिकी ओर ले जायगी। आज अच्छे कार्योंमें लगे हुअे अनेक सज्जन कार्य करने और अुसके द्वारा अपनी अुन्नति साधनेके बजाय अपनी मान-प्रतिष्ठाकी ओर अधिक ध्यान देते हैं, अिसके लिअे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें युक्तियां आजमाते हैं, असत्य, दंभ और धूर्तताका आश्रय लेते हैं और बाहरसे कार्यनिष्ठा और निरहंकारताका दिखावा करते हैं। अिस विषयमें सावधान न रहेंगे, तो आप भी अुनके जैसे ही बन जायेंगे।

मनुष्य अेकदम अिस मोहमें नहीं फंसता। मान-प्रतिष्ठा देनेवाले और प्राप्त करनेवाले दोनोंको आनन्द आता है। अिस कारणसे प्रथम तो हमें अैसा लगता ही नहीं कि मान-प्रतिष्ठा स्वीकार करनेमें हम कोअी गलती कर रहे हैं, अुलटे हम मानते हैं कि अैसा करके हम दूसरोंको आनन्द प्रदान कर रहे हैं। परन्तु आगे चलकर हमें कितने असत्य, दंभ और अन्यायका आचरण करना पडता है, जिसकी किसीको कल्पना भी नहीं आती। अेक बार मान-प्रतिष्ठाकी चाट लग जाने और अुसकी लत पड जानेके बाद मनुष्यकी पहली स्थिति नहीं रहती। वह दिनोंदिन अवनतिकी ओर बढता जाता है। सात्त्विक जीवन बितानेवाले, अपनी अुन्नतिके लिअे अनेक तरहके कष्ट सहनेवाले भक्तकोटिके मनुष्य भी लोगोंसे मिली हुअी मान-प्रतिष्ठा और कीर्तिके कारण अपनेको अीश्वर समझने लगते हैं। मान-प्रतिष्ठाके मोहमें अितना नशा होता है कि थोडे ही दिनोंमें मनुष्यको अपनी मनुष्यताका

भान नही रह जाता। 'मै ही आत्मा हू', 'मै ही ब्रह्म हू', 'मै ही ओश्वर हू' अिस प्रकारकी चाहे जैसी असबद्ध बाते वह बोलने लगता है। अिसके कारण है मनुष्यका अहकार, अविवेक, अुसकी असावधानी और मानवता पर अुसका अविश्वास। लोगो द्वारा मिलनेवाले आदर-सम्मानके कारण अुसका अहकार बढता जाता है, अुसे प्रोत्साहन मिलता है। अुस अहकारसे मद, मदसे नशा, नशेसे बुद्धिभ्रश और बुद्धिभ्रशसे सब प्रकारके अनर्थ होते है। अिस मोहमे रहा मद और नशा अुग्र न हो तो भी वह मनुष्यकी मति और विवेकको मन्द बना देता है, अिसमे शका नही।

मनुष्य अिस मोहमे जब फसता है, तब सबसे पहले सत्य पर अुसकी श्रद्धा कम हो जाती है। जो गुण अुसमे होते है अुनके साथ न होनेवाले गुणोका भी दिखावा करनेकी अुसकी मनोवृत्ति बन जाती है। अुन गुणोकी लोग प्रशसा करे तो अुसे खुशी होती है। ओश्वरका भक्त कहलानेवाला भी जो चमत्कार शक्ति अुसमे नही होती अुसके होनेका लोगोको भास कराता है, अथवा लोग जब अैसी शक्ति अुसमे होनेकी बात कहने लगते है तो अुसे वह स्वीकार कर लेता है। वह अिस मोहमे फस जाता है। अपने भीतर न हो अैसे गुणोके विषयमे अपनी प्रशसा सुननेकी आदत पड़ जानेके बाद दूसरोके अुन गुणोकी प्रशसा सुनते ही अुसमे ओर्ष्या और मत्सर पैदा होते है। अुन पर कुछ दोषा-रोपण करनेका भी वह प्रयत्न करता है। अिस प्रकार सत्यके छूट जानेके बाद वह अेकके बाद दूसरी अनुचित बात करने लगता है। सच पूछा जाय तो धनवान मनुष्य अुदार और परोपकारी होता ही है अैसी बात नही, अितना ही नही, अुसके दानमे दयावृत्ति भी नही होती। अुसी तरह राष्ट्रका कार्य करनेवाले लोगोमे व्यापक राष्ट्र-भावना अनिवार्य रूपमे नही होती। तीर्थ-यात्रा या भजन-पूजन करनेवालेमे ओश्वरी प्रेम, मानव-प्रेम और भूतदया होती ही है अैसा नही। अिस परसे हमे समझ लेना चाहिये कि गीता पर व्याख्यान देना और आध्यात्मिक ज्ञान होना दोनोमे भेद है। अविवाहित स्थिति और ब्रह्मचर्य अवस्थामे फर्क है। हिमालय और अेकान्तवासका ज्ञानके साथ अनिवार्य सबध नही है। बल-सपन्न बनने और पवित्रता सिद्ध करनेमे बहुत फर्क है। साधुता और अुसके लिअे अलग वेश — अिन दोनोमे कोअी सबध नही है। अैसा होते हुअे भी अिस विषयमे श्रद्धालु लोग फस जाते है और जान-बूझकर अुन्हे फसाया भी जाता है। जो सत्यका

अुपासक है, वह गुणोके विषयमे निरहकार रहता हे और अपनेमे जो गुण नही होते अुनका दूसरोको कभी भास नही कराता। अुसे प्रतिष्ठाकी अपेक्षा सत्य और मानवता कही ज्यादा श्रेष्ठ मालूम होते हैं।

आप बाह्य वेशसे अथवा अुन्नतिके लिअे अनावश्यक किसी व्रत या नियमसे अपनी विशेषता प्रकट करनेका प्रयत्न न करे। आपमे सादगी और व्यवस्थितता होनी चाहिये। आप स्वास्थ्य और स्वच्छताको महत्त्व दे। सद्गुणो और सदाचारके कारण जो स्वाभाविक विशेषता लोगोको आपमे दिखाअी दे, अुसके सिवा अन्य किसी भी विशेषताका कल्याणकी दृष्टिसे आपके मनमे महत्त्व न होना चाहिये। विशेषताके कारण मनुष्य दूसरोसे अलग पडता है। अिस अलगपनके कारण लोगोमे अुसके विषयमे अमुक भाव निर्माण होता है। अुतनेके लिअे कोअी अपनी विशेषता बाहरी वेश-भूषासे, कोअी भाषण द्वारा, तो कोअी किसी सकेत द्वारा प्रकट करता हे। शायद अैसा करनेमे अुनका पहला हेतु निरहकारता और सावधानीका हो, परन्तु आगे चलकर धीरे-धीरे अुनमे दभ और अहकारकी वृद्धि होती हे। कुल मिलाकर अुन्नतिकी दृष्टिसे अैसी विशेषताका कोअी अुपयोग नही है, अुलटे मान-प्रतिष्ठा बढानेमे अुसका अुपयोग किया जाता हे।

कदाचित् आपमे से कोअी कालान्तरमे श्रेष्ठ बन जाय और अुसका रौप्य या सुवर्ण महोत्सव मनानेका भी अवसर आये। अुस समय अैसे अवसरको टालनेमे ही अुसका और अन्य लोगोका भी कल्याण होगा। वर्ना अुस निमित्तसे अुसका मान-प्रतिष्ठाका मोह जाग्रत होगा। लोकेच्छाको मान देनेके बहाने और निरहकारताके भ्रममे वह अिसके लिअे तयार होगा और अतमे अिस मोहमे फस जायगा। अुस समय अुसे कोअी जाग्रत करनेका प्रयत्न करे तो वह मनुष्य अुसे शत्रु जैसा मालूम होगा। 'अुसे मुझसे अीर्ष्या और मत्सर होता हे,' अैसी-अेसी बाते कहनेमे वह पीछे नही हटेगा, क्योकि अहकार जाग्रत हो जानेके बाद विवेकका रहना कठिन होता है। हम यदि सदाचारी हो, सदाचरण पर हमारी निष्ठा हो, यदि हमारा यह विश्वास हो कि सदाचरणमे मानव-जातिका कल्याण होगा, तो हम मान-प्रतिष्ठाके मोहमे कभी नही पडेगे। सदाचरणके कारण हममे जो बल निर्माण होता रहेगा, जो शुद्धि बढती जायगी, अुसका अुपयोग अन्य किसी कार्यमे न करके सदाचारका बल और शुद्धि बढानेमे ही हम करते रहेगे।

मानवता पर हमारा विश्वास होने और सावधान रहनेके कारण हम यही करते रहेंगे। अहंकारमे मानवताका गौरव नही, बल्कि विडम्बना है। धन, विद्या, बल, यौवन, सौन्दर्य, कला, सत्ता, यहा तक कि अीश्वर-भक्ति और ज्ञानके निमित्तसे भी प्राणीमे रहा अहकार जाग्रत होता है और बढता रहता है। लोकादरसे अुसे पोषण मिलता है। परन्तु अिस सत्र परसे हमें स्पष्टत· समझ लेना चाहिये कि लोगोके अुत्साह और अुमगके खातिर हमे लोक-रजनके गलत मार्ग पर नही चलना चाहिये। लोग आज हमे अीश्वर बनाकर आनन्द प्राप्त करेंगे, तो कल हमारा पतन होने पर हमारी निन्दा करेंगे और अुसमे से भी आनन्द प्राप्त करेंगे, और मान लीजिये कि वे हमारी निन्दा न करें और अन्त तक हमारे प्रशसक और पूजक बने रहे, तो अुससे हमारा या अुनका क्या कल्याण होनेवाला है? अेक-दूसरेमे न हो अैसे गुणोकी प्रशसा करते रहकर या दोषोको सहन करते रहकर सबको दभी बनानेमें किसका कल्याण होगा? अिन सब बातोका विचार करके आपको अहकारसे दूर रहना चाहिये। आपको समझना चाहिये कि चित्तको सदा शुद्ध रखकर अपनी मानवताका विकास करनेके लिअे सद्गुणोका आग्रह रखना ही हमारे जीवनका कार्य है। जीवनका सच्चा महत्त्व समझमें आ जानेके बाद और जीवनका शुद्ध आदर्श आपके गले अुतर जानेके बाद आप किसी मोहमे नही फसेंगे। परमात्मा पर आपकी निष्ठा होगी, तो वह आपको हर प्रकारके मोहमे, विघ्नमें और संकटमे सावधान रखेगा और आपको मानवताकी चरम सीमा पर पहुचा देगा, अिसमे मुझे कोअी शका नही है।*

* अेक प्रवचन।

१३

समबुद्धि-योगका क्षेत्र

आपका 'अहिंसा या समबुद्धिसे हिंसा?' नामक लेख मुझे पसन्द आया। मूल शका पढकर मुझे अैसा सदेह हुआ कि अुसमे कही अहिंसाके विचारकी हसी तो नही अुडाओी गओी है? परन्तु यदि सचमुच ही किसीका अैसा मत हो, तो अुस विषयमे मुझे जो विचार सूझते हैं वे सक्षेपमे मैं आपको लिख भेजता हू।

अपने सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, जीवन-मरण, पाप-पुण्य आदिके विषयमे अनेक सच्ची-झूठी कल्पनायें अुठनेके कारण हमारा मन चचल बन जाता है, तब चित्तको स्थिर रखकर काम करनेके लिअे समबुद्धिकी आवश्यकता होती है। दूसरोके सुख-दुःख, भलाओी-बुराओी, हिंसा-अहिंसाके विषयमें विचारशून्य बननेके लिअे समबुद्धिकी आवश्यकता नही है। अपनी धार्मिक मान्यताओं और हार्दिक भावनाओके कारण स्वजनोकी हिंसा करनेमें अर्जुनको भय और पाप मालूम होता था। अुस अवसर पर अर्जुनको अुसका कर्तव्य और धर्म समझाते हुअे भय और पापसे मुक्त होनेके मार्ग — अुपाय — के रूपमें अुसे समबुद्धिका अुपदेश दिया गया। 'कर्मोंको मुझे अर्पण कर दे', 'मत्परायण होकर कर्म कर', 'अीश्वरके सूत्रधारत्वको पहचान कर कर्म कर' आदि जो वचन गीतामे कहे गये हैं, वे निरहकार भावसे कर्म किया जाय, कर्तापनका अभिमान न रखकर कर्म किया जाय तो अुस कर्मके अच्छे-बुरे फलो — परिणामोसे — मनुष्य अलिप्त रह सकता है, अुसे कर्मका बधन नही होता, यह बात अर्जुनको समझाने, अुसके मनमें बैठाने तथा पापके भयसे अुसे मुक्त करनेके लिअे कहे गये हैं। समबुद्धि कहनेका हेतु भी यही है। मृत्युके पश्चात् होनेवाली हमारी गतिके भयके साथ पापका सबध माना गया है।

समबुद्धिके अुपदेशका कारण

आज हमारी धार्मिक कल्पनायें, भावनायें और मान्यतायें अुस जमानेकी तरह नही रही। वर्ण-सकरता, पिंडोदक न मिलनेसे पितरोकी होनेवाली दुर्दशा, कर्म-विपाक, पुनर्जन्म, फलासक्तिके कारण भोगनी पडती जन्म-मरणकी परम्परा, मोक्ष आदिके सबधमे हमारी मान्यतायें, श्रद्धायें और भावनायें आज

धर्म-कल्पनामें परिवर्तन

बहुत कुछ वदल गअी है। आजकी स्थितिमे अुस कालका अुपदेश हमारे लिअे नही है, अैसा हमे समझना चाहिये। अुस कालकी धार्मिक कल्पनाओके अनुसार ही अुनकी पाप-विषयक कल्पनाये थी, और अुनके अनुसार ही पाप-प्रक्षालनके —— प्रायश्चित्तोके अुपाय भी काल्पनिक ही थे।

'पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्' अिस श्लोकमे बताअी हुअी स्वाभाविक क्रियाओकी तरह ही शस्त्र चलाना —— लड़ना —— अुस समयके क्षत्रियोका लगभग सहज कर्म बन गया था। अुनकी श्रद्धा थी कि यही हमारा जन्मजात धर्म है, और अुसके अनुसार ही अुनका स्वभाव बन गया था। धार्मिक मानी हुअी बातोके लिअे मौका आने पर प्राण लेना या देना, प्राण लेने या देनेके लिअे तैयार हो जाना, अुनके नित्य-जीवनमे स्वाभाविक बन गया था। अुसमे अुन्हे कोअी विशेषता नही मालूम होती थी।

हिसाका विचार करते समय श्रीकृष्ण और अर्जुनके सवादका हमारी वृत्ति या मनको अनुकूल लगनेवाला भाग हम ग्रहण कर लेते है, परन्तु अुसके साथ हम अिस बात पर ध्यान नही देते कि धार्मिक मानी हुअी दूसरी बातोमे भी वे लोग कितने दृढ थे। द्रौपदीके सम्बन्धमे पांच भाअियोने जो नियम ठहरा लिया था, अुसका अर्जुन द्वारा थोडा भंग होते ही अुसने तीर्थाटनका प्रायश्चित्त किया। अुस विषयमे अुसने किसीकी कोअी बात स्वीकार नही की। सच पूछा जाय तो यह नियम-भग अर्जुनको अेक अन्य धर्मका पालन करनेके लिअे, शुभ हेतुके लिअे, करना पडा था। परन्तु अुसने शुभ हेतुका आश्रय लेकर प्रायश्चित्तसे बचनेका प्रयत्न नही किया। समग्र गीता-तत्त्वको समझ लेनेके बाद भी जयद्रथ-वधके बारेमे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न हुअी देखकर अर्जुन शस्त्र त्यागकर चिता पर चढनेको तैयार हो गया, यद्यपि वह जानता था कि अपने पक्षकी, सारी लडाअीकी, विजयका सारा दार-मदार अुसी पर है। युधिष्ठिरने गाडीवकी निन्दा की तब अपनी प्रतिज्ञा पालनेके लिअे अर्जुन तलवार लेकर अुन पर झपट पडा था। अिस सब परसे यही मालूम होता है कि शस्त्रोका अुपयोग करना और प्राण लेने या देनेके लिअे तत्पर हो जाना —— यह स्वभाव अुनके रोम-रोममे बस गया था। और अिस सबके वावजूद अुन्हे यह भी स्वीकार था कि हिसा करनेमे दोष है; अिसीलिअे भारतीय युद्धमे हुअे पापका प्रायश्चित्त पाडवोको अश्वमेध यज्ञ द्वारा करना पडा। हिसाके दोषका प्रक्षालन दूसरी हिसाके

द्वारा कैसे हो सकता है, यह तो अुन जमानेके लोग ही समझ सकते थे। परन्तु अितना निश्चित है कि अुनकी धर्म, पाप और पाप-प्रक्षालनकी कल्पनाअें अैसी ही थीं।

आज हमारी कल्पनाअें वैसी ही हैं, यह कोअी नहीं कह सकेगा। और यदि अैसा नहीं है तो अुन कालके लोगोंकी समबुद्धिका आधार आज हमारे लिअे किस कामका? सार यह है कि श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको दिये हुअे अुपदेश परसे हम आजके अपने कर्तव्य निश्चित नहीं कर सकते। क्योंकि काल-प्रवाहके साथ धर्माधर्मके विषयमें हमारे विचारोंमें परिवर्तन हुआ है, तथा शिक्षा, संस्कारों, अनुभवों और परस्पर सम्बन्धोंमें भी फर्क पड़ गया है।

धर्म्य कर्म निश्चित करनेकी दृष्टि

कोअी कर्म अच्छा है या बुरा (योग्य है या अयोग्य), यह समबुद्धि, स्थिरबुद्धि, सहजकर्म, व्यक्तिगत फलासक्ति छोड़कर किये गये कर्म आदि परसे नहीं ठहराया जा सकता। अच्छे-बुरेकी परवाह न करनेमें समबुद्धिका आभास होना संभव है। सतत अभ्यासके द्वारा स्थिरबुद्धिसे स्वाभाविक रूपमें कर्म करना आ सकता है। व्यक्तिगत लाभकी दृष्टिको प्रधानता न देकर सामुदायिक लाभकी दृष्टिसे किये हुअे कर्म फलाशा-रहित हैं अैसा माना जा सकता है। परन्तु अितने परसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि अैसे सारे कर्म निर्दोष हैं। कर्मोंकी सदोषता और निर्दोषता केवल सम-विषम बुद्धि परसे अथवा सकाम-निष्काम हेतु परसे निश्चित नहीं होती। कोअी कर्म न्याय्य अथवा अुचित है या नहीं, यह देखकर अुसकी योग्यता या अयोग्यता ठहराअी जाती है। समबुद्धि, स्थिरबुद्धि, फलके विषयमें अनासक्ति आदि प्रश्न अुसके बादके हैं। केवल समबुद्धिसे की गअी हिंसा अहिंसा ही है, अैसा मानें तब तो अैसे कितने ही कर्म सदोष होते हुअे भी केवल समबुद्धिसे किये गये होनेके कारण निर्दोष माने जाने लगेंगे। चोरी, डाका, जुआ, दुराचार आदि सारे कार्योंमें निष्णात लोग कर्म करते हुअे भी अकर्ता हो सकेंगे। लुटेरोंकी टोलीका आदमी केवल व्यक्तिगत स्वार्थके लिअे किसीको नहीं लूटता। परन्तु अिस परसे यह नहीं कहा जा सकता कि व्यक्तिगत स्वार्थके लिअे नहीं बल्कि सामुदायिक स्वार्थकी दृष्टिसे किये हुअे अुसके कर्ममें दोष नहीं है।

‘न जायते म्रियते वा कदाचित्’, ‘अशोन्यानन्वशोचस्त्वम्’ आदि श्लोको द्वारा गीतामे आत्माकी अमरताका जो अुपदेश किया गया है, अुसके आधार पर हिंसा करनेमे कोअी दोष नही अैसा

हिंसाका गलत समर्थन

मानकर यदि कोअी नि.शंक भावसे हिंसाका समर्थन करे, तो अुसे संत तुकारामके निम्नलिखित अभंगका रहस्य समझनेका प्रयत्न करना चाहिये :

वाघे अुपदेशिला कोल्हा । सुखे खाअु द्यावे मला ।।
अती मरसी ते न चुके । मज हि मारितोसी भुके ।।
येरू म्हणे भला भला । निवाड तुझ्या तोंडे झाला ।।
देह तव जाणार! घडेल हा अुपकार ।।
येरू म्हणे मनी । अैसे जावे समजोनी ।।
गाठी पडली ठका ठका । त्याचे वर्म जाणे तुका ।।

भावार्थ —— बाघ सियारको अुपदेश करता है कि ‘तू मुझे शांतिसे अर्थात् झगडा किये बिना तुझे खा जाने दे। तू अन्तमे तो मरनेवाला है ही, फिर मुझे क्यों भूखो मारता है?’ सियारने अुत्तर दिया, ‘यह तूने अच्छी बात कही। तूने ही अपने मुंहसे निर्णय कर दिया है। तेरा शरीर भी अन्तमें तो छूटने ही वाला है, फिर मुझे छोडकर तू अुपकारका पुण्य क्यों नहीं लेता।’ बाघ मनमें कहने लगा, ‘यह बात यहीं खतम करनेमें बुद्धिमानी है।’ तुकाराम कहते हैं, जब ठग ठगसे मिलता है, तब वे अेक-दूसरेके दिलकी बात समझते हैं।

‘यस्य नाऽहंकृतो भावो’ श्लोकमें बताये गये सिद्धान्तका हिंसाके लिअे आधार लेनेके पहले अैसा निरहंकारी पुरुष खोज निकालना चाहिये। अुसके विषयमें हमें अिस बातकी खोज करनी चाहिये कि अुसका आचरण कैसा है, वह कैसे कर्म करता है, अुसकी स्थिति, मति और वृत्ति कैसी है। बादमें अिस खोज परसे हमें निरहंकारी पुरुषके सच्चे आचरणका ज्ञान होगा। अिस ज्ञानके आधार पर हम अिस विषयमें कोअी सिद्धान्त तय कर सकेंगे। परन्तु अैसा कुछ न करके, अुस स्थितिको न पहचान कर, केवल अपनी कल्पनाका अेक निरहंकारी पुरुष निर्माण करके अुसके हाथमें शस्त्र दे दें और अुसके हाथसे सब लोगोंका संहार हो तो भी अुसे निर्दोष मानें और अुसके आधार पर हमारे मनमें अुत्पन्न होनेवाली हिंसाको अहिंसा सिद्ध करनेका प्रयत्न

करे, तो यह ठीक नहीं होगा। तात्त्विक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियोंसे यह बात असंभव है। क्योंकि अुसके पीछे रहा निरहंकारी पुरुष काल्पनिक है, अुसके भोग, हिंसा-अहिंसा, निर्दोषता सब कुछ बातें काल्पनिक हैं। अुसमें केवल कल्पना करनेवाला और अुसकी हिंसावृत्ति ये दो वस्तुअें ही सत्य हैं। अतः प्रत्यक्ष निरहंकारी पुरुषकी प्राप्ति होने तक हमें धैर्य रखना चाहिये। अुसके बाद ही अिस विषयमें कुछ निश्चित करना आसान होगा।

हिंसामें दोष है, यह कल्पना लम्बे समयसे मानव समाजमें अुत्पन्न हुअी है। आज मनुष्य अुसे अधिक स्पष्ट रूपमें समझता है। साथ ही मनुष्यमें स्वार्थवृत्ति भी पूरी पूरी भरी हुअी है। अुस स्वार्थवृत्तिके लिअे जब जब मनुष्यको हिंसा करनी पड़ी है, तब तब अुसे निर्दोष ठहरानेका भी अुसने प्रयत्न किया है। स्वार्थ कभी व्यक्तिगत हो सकता है, तो कभी अुसका सम्बन्ध जाति, समाज, धर्म, राष्ट्र, देश आदिसे हो सकता है। यज्ञके लिअे, धर्मके लिअे, देशके लिअे की गअी हिंसा अथवा परमेश्वरके नाम पर की गअी हिंसा हिंसा नहीं बल्कि अेक कर्तव्य है, अैसी हिंसा करनेमें पुण्य है, अिस आशयके वचन धार्मिक और राष्ट्रीय ग्रंथोंमें मिल जायंगे। अुन वचनोंके आधार पर ही बड़े-बड़े यज्ञ किये जाते थे। अैसे ही वचनोंके आधार पर अपने-अपने समाजको अुत्तेजित करके धर्मके नाम पर 'क्रूसेड' जैसे धार्मिक युद्ध दीर्घ काल तक लड़े जाते थे। अुनकी सहायतासे अेक धर्मके अनुयायी दूसरे धर्मके अनुयायियों पर अपार अत्याचार करते थे। आजका भयंकर हत्याकांड भी अैसे ही वचनोंके आधार पर चलता है। मनुष्यमें रही दुष्टता, कठोरता, स्वार्थ आदि वृत्तियां जब धर्मका और देशभक्तिका आश्रय लेकर अुठती हैं, तब वे भयंकरताकी चरम सीमाको पहुंच जाती हैं।

यज्ञके बलिदानको आज कोअी धर्म्य मानता है? 'क्रूसेड' जैसे युद्धोंको अुस धर्मके अनुयायियोंके सिवा दूसरे कोअी धर्मयुद्ध समझते हैं? पुण्य या सद्गतिके लालचसे कराये गये संहारको कोअी धर्म्य समझता है?

थोड़ा विचार करें तो गीतामें भी यही बात कही हुअी मालूम होगी। 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्' श्लोकमें मरेगा तो स्वर्ग और जीतेगा तो राज्य मिलेगा — ये दोनों बातें हिंसाको निर्दोष सिद्ध करनेके लिअे ही कही गअी हैं। अिन दोनोंकी जिसे परवाह न हो, परन्तु जिसे मोक्षकी अथवा अैसी अन्य कोअी अुच्च आकांक्षा हो और अिस कारणसे हिंसा जिसे दोषरूप लगती हो,

अुसके सन्तोषके लिअे 'समबुद्धिका मार्ग' खोजना पडा। परन्तु यज्ञ, धर्म, देश, समबुद्धि—ये सब कल्पनाये अेक ही वर्गकी है। समबुद्धिकी कल्पना और दूसरी कल्पनाओमे केवल अितना ही भेद है कि समबुद्धिकी कल्पनामें पुण्य या स्वर्गकी आशा न दिखाकर मोक्षकी आशा दिखाअी गअी है।

अल्प दोषवाली हिसा

पाप-पुण्यकी पुरानी कल्पनाये—मान्यताये—आजकी पीढीमें लगभग नष्ट हो गअी है। अुनसे लगनेवाले भय और लालसाकी भावनाये भी पहले जैसी नही रही। हजारो वर्ष पुरानी अिन कल्पनाओ, मान्यताओ अथवा भावनाओको मुख्य प्रमाण मानकर अुसके आधार पर हम अपने आजके जीवनकी सामान्य बातोका निर्णय नही करते या नियम नही तय करते। अैसी स्थितिमे आज प्रत्यक्ष हो रही घटनाओं, अुनके कारणो और परिणामो परसे हम अधिकसे अधिक अितना ही कह सकते है कि केवल व्यक्तिगत या सामुदायिक स्वार्थके लिअे अथवा विलास और वैभव बढानेके लिअे हो रही हिसाकी अपेक्षा अपने या अपने जैसे दूसरे लोगोके प्राणो और शीलकी रक्षाके लिअे तथा न्यायपूर्वक आजीविका चलानेके लिअे जो हिसा करनी पड़ती है वह बहुत कम दोषवाली है। अुतने अल्प दोषसे भी बचकर अपना अभीष्ट सिद्ध करनेका—अर्थात् धारण-पोषण करनेका—सामर्थ्य अभी तक मनुष्यमे आया नही है। अुसे प्राप्त करनेके साधन या मार्ग मनुष्यको अभी तक मिले नही है। अत अुतना दोष स्वीकार करके भी अुसे अपना अभीष्ट सिद्ध करनेका प्रयत्न करना पडता है। सच बात कहनी हो तो हम अितना ही कह सकते है।

हिसा-अहिसा विषयक विचारसरणीको हम आज बदलना चाहते है। आज हम अिस बातका विचार भिन्न दृष्टिसे करनेका प्रयत्न करते है।

आजका मुख्य प्रश्न

मानव-जातिके अितिहासकी जाच करनेसे तथा आजकी स्थिति पर विचार करनेसे मालूम होता है कि युद्धों और अुनके कारण होनेवाली हिसा आज चरम सीमाको पहुच गअी है। हिसासे प्रतिहिसाकी वृत्ति ही बढती जाती है। अिस परसे यह स्पष्ट समझमे आने लगा है कि हिसा हिसाको नही मिटा सकती। अुपाय वही सच्चा है जिससे अुपाय करनेके अवसर अुत्तरोत्तर कम होते जाय। अैसे अुपाय की खोज चल रही है। युद्धसे होनेवाली हिसासे आज

सपूर्ण मानव-जाति दु खी, त्रस्त और भयभीत है। आज निर्दोष और निर्बल लोगोका भी व्यर्थ सहार हो रहा है। दुष्टता, दभ, छल-कपट, धोखेवाजी, अन्याय, अत्याचार और अविश्वास बढते जा रहे है। युद्धमे अिन सवका अुभार आ जाता है। परन्तु युद्ध न हो तव भी अिन मारी दुष्ट वृत्तियोकी छाया मानव-जीवन पर फैली रहती है, जिमकी वजहसे मनुष्य-मनुष्यके वीचके वहुतने व्यवहार अपवित्र, भ्रष्ट, कलुपित और कलकित हो जाते है। आज मनुष्य ही मनुष्यका मवसे वडा और भयकर शत्रु वन गया है। प्रचलित हिंसात्मक अुपायोसे अिस स्थितिके वदलनेकी सभावना नही मालूम होती। अत आज हमे अैसे किसी सामुदायिक और सगठित अुपायकी जरूरत है, जिससे मनुष्य-स्वभावमे वढ रही अिस राक्षसी वृत्तिका नियत्रण किया जा सके। हमे अिस बातकी खोज करना है कि अहिंसाका किस किस क्षेत्रमे किस तरह प्रचार करनेसे और सगठित योजनाको किस तरह अमलमे लानेसे यह राक्षसी वृत्ति कम होगी। समवुद्धिके आधार पर हिंसाको निर्दोष सिद्ध करनेसे अथवा स्थितप्रज्ञोकी सेना तैयार करनेका प्रयत्न करनेसे मानव-जातिका आजका यह विकट प्रश्न हल नही होगा। गीताके लक्षणोवाला कोअी स्थित-प्रज्ञ युद्धमे लड सकेगा या नही अिसमे पूरी शका है, वह लड सकेगा अैसा मान लें तो भी अधिकसे अधिक अिसका परिणाम अितना ही आ सकता है कि स्थितप्रज्ञोकी सेनामे लडनेका थोडा अधिक वल अुत्पन्न होनेका अनुभव हो, तो दुनियामे सर्वत्र स्थितप्रज्ञोकी सेनाये तैयार होने लगे और आज साधारण लोगोमे जो युद्ध चल रहे है वे स्थितप्रज्ञोमे चलने लगे। परन्तु मानव-जातिकी परस्पर सहार करनेकी वृत्ति कैसे वदले, यह मुख्य प्रश्न तो हल हुअे विना वैसा ही खडा रहेगा। अिस कारणसे आजकी अहिंसात्मक विचारसरणीसे ही यह प्रश्न हल किया जाना चाहिये। अिसके सिवा और कोअी मार्ग नही है।*

---

* नवम्वर १९४० के 'शिक्षण अने साहित्य' मे छपा हुआ पत्र सुधार कर यहा दिया गया है।

१४

कर्मोंमें अप्रमाद

आपने सक्षेपमे जो लिखा है, अुसे मैं समझ गया हू। आपको याद होगा कि अिस विषयमे मैंने पहले भी आपको लिखा था। मैं पहलेसे ही आपको सावधानता अर्थात् जागृतिके विषयमे कहता आया हूं। 'गुणोका विकास', 'प्रेम और वैराग्य', 'व्यक्ति और समाजका अविछिन्न सम्बन्ध', 'किसी भी अतिरेकका निषेध' आदि विषयो पर मेरी आपके साथ कअी वार चर्चा हो चुकी है। मै आज तक आपसे कहता आया हू कि हमारी अपनी अुन्नति परिवार, समाज, राष्ट्र, मानव-जाति आदि किसीके भी कल्याणमे बाधक नही होनी चाहिये, न्यायमार्गसे ही हमे आगे बढना चाहिये, अित्यादि। यह सच है कि आज जिस व्यवस्थित ढगसे या जिस पद्धतिसे कुछ बातो पर विशेष भार देकर मै कहता हू, वैसा मैंने पहले कभी नही कहा था। प्रसंगानुसार ही मै कहता हू। मनमे जो कुछ हो अुसे बार बार कहते ही रहनेका मेरा स्वभाव नही है। सामनेवालेकी तीव्र जिज्ञासा देखकर ही मुझे कुछ कहनेकी अिच्छा होती है, अथवा जब मुझे लगता है कि न कहनेसे दूसरेका नुकसान हो सकता है या जब मै यह समझ लेता हू कि मुझ पर विश्वास रखकर किसीने यह निश्चय कर लिया है कि मेरे विचार ही अुसके जीवनका मार्गदर्शन कर सकते है, तभी मुझे कुछ कहनेकी अिच्छा होती है।

सावधानता, दक्षता, तत्परता आदि गुणो पर मै पहलेसे ही जोर देता आया हू। किसी भी कर्ममे हममे असावधानी नही होनी चाहिये। अपनी अिन्द्रियोके व्यापारके विषयमे हम असावधान रहे तो हमारा कल्याण नही होगा। हमारी सब अिन्द्रियोमे अनुशासन, व्यवस्थितता और कुशलता हो, तो कोअी भी कार्य हमसे असावधानी या गफलतमे नही हो सकता। हमारे छोटे-बडे सभी कार्य सावधानीपूर्वक और निर्दोष भावसे होने चाहिये। जो कर्म अनावश्यक हो, अुन्हे छोड देना चाहिये, परन्तु प्रत्येक आवश्यक कर्म हमे व्यवस्थित रूपमे और कुशलतासे करते आना चाहिये। जैसे तैसे किये हुअे कर्मसे यदि हमे सन्तोष हो जाय, तो निश्चित ही हमारी मनोरचनामे,

सस्कारोमे और स्वभावमें कोअी दोष होना चाहिये। और जब तक यह दोष हममें रहेगा, तब तक विश्वासपूर्वक यह नही कहा जा सकता कि हमारे छोटे या बडे कर्ममे वह कब और कैसे बाधक होगा। यह बात हमें सदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि अपने दोषको सहन करनेमे हम दुगुने दोषी बनते हैं। दोष सहन करनेमे हमारा अहकार या जडता जैसा कोअी दुर्गुण ही कारण होता है। मैं केवल कर्मका ही आग्रही नही हू, परन्तु अिस बातका भी आग्रह रखता हू कि अुसमें किसी भी प्रकारकी शारीरिक, बौद्धिक या मानसिक विगुणता या दोष नही होना चाहिये।

पत्र, २५–६–'२७

१५

अध्यात्मके विषयमें सही ज्ञान

मैं आपको यह बताता हू कि श्रेयार्थीको आध्यात्मिक हेतुके लिअे मुख्यत कौनसी बातोमें नि शक होना चाहिये, अर्थात् अिस दृष्टिसे कौन कौनसी बातोका महत्त्व है। अिस बात पर आप विचार करेंगे तो आपके द्वारा वह किसी भी साधकके लिअे अुपयोगी सिद्ध होगा। अिस विषयमें साधकके मनमें हमारी परम्परागत विचारसरणीके कारण कैसे कैसे प्रश्न अुठते हैं, यह थोडेमें बताता हू। अुदाहरणार्थ, प्रवृत्ति श्रेष्ठ है या निवृत्ति? अीश्वर-प्राप्तिके लिअे प्रतिदिनके सासारिक कर्म छोडनेमें कोअी दोष है? अीश्वर-प्राप्ति या आत्म-प्राप्तिके लिअे प्रतिदिन कितना समय अभ्यासमें बिताना जरूरी है? केवल सामाजिक अथवा कौटुम्बिक कार्यमें समय बीतने पर मनकी स्थिति यत्रवत् हो जाती है, तब जीवनमें कोअी आनन्द नही मालूम होता। अैसे समय क्या किया जाय? अैसी स्थितिमें सब कुछ छोडकर अीश्वर-प्राप्तिके लिअे ही सारा समय बितानेमें कोअी दोष है? 'हम स्वय ही आत्मा हैं' अिस भावनामें सदा स्थिर रहनेका अभ्यास करे तो आत्मसिद्धि होगी या नही? कुछ लोग कहते हैं कि शाति स्वयभू है। अिसलिअे दूसरा कोअी विचार न करके हम वही शाति बनाये रखनेका प्रयत्न करे तो? वेदान्तकी विचारसरणीके अनुसार 'अह ब्रह्मास्मि'की

मस्ती अुत्पन्न करनेसे और अुसे बढाते रहनेसे आत्मस्थिति प्राप्त होगी या नही? अीश्वरका साक्षात्कार कैसे हो सकता है? ये और अैसे अनेक प्रश्न सामान्यत साधकके मनमे अुठते है। अिन प्रश्नोके सही अुत्तर न मिलनेसे जीवनके कार्यमे अुसे सन्तोषका अनुभव नही होता।

अनेक प्रकारके अुलटे-सीधे सस्कारोके कारण, अनेक प्रकारकी सच्ची-झूठी मान्यताओ, कल्पनाओ और श्रद्धाओके कारण यह विषय बडा अुलझन-वाला बन गया है। कुछ समय तक विवेकी मनुष्यकी जिज्ञासापूर्वक सगति करनेसे अिसमे से मार्ग निकालना कठिन नही है। क्योंकि यह विषय अन्य विषयोकी तरह सरल है और अभ्यास तथा अनुभवसे समझमे आने जैसा है। अिसकी विशेषता यह है कि अिसमे अतर्मुख-वृत्ति, विवेक, सयम, दृढता, चित्तशुद्धि, आत्म-परीक्षण, धैर्य, लगन, सद्‌गुणोके विषयमे स्वाभाविक रुचि, प्रयत्नशीलता आदिकी विशेष आवश्यकता होती है। अिस विषयमे श्रेयार्थीको अूपर दिये गये प्रश्नोके यथार्थ अुत्तर प्राप्त करके सारी बाते भलीभाति समझ लेनी चाहिये।

मानव-जीवनका सच्चा हेतु क्या है? अुस हेतुकी सत्यताकी परीक्षा किस आधार पर और किस ढंगसे करनी चाहिये? यह श्रेयार्थीको समझ लेना चाहिये। जीवनका हेतु केवल काल्पनिक अर्थात् माना हुआ नही होना चाहिये। प्रत्यक्ष प्रमाणसे अुसकी सत्यता साधकके गले अुतर जानी चाहिये। अीश्वर-परमेश्वर, आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म, प्रवृत्ति-निवृत्ति, प्रकृति-माया, त्रिगुण आदिका सच्चा ज्ञान अुसे हो जाना चाहिये। अुसी तरह अुसे यह भी जान लेना चाहिये कि अुपरोक्त विषयोके ज्ञान-अज्ञानका मानवके सुख-दु:ख, आशा-तृष्णा, वासना, बन्धन, शाति-अशांति, अुन्नति-अवनतिके साथ क्या सम्बन्ध है? दोनोके बीच सचमुच कोअी सम्बन्ध है या गलत समझके कारण हम अैसा मानते आये है, अिसका निर्णय हो जाना चाहिये। व्यक्ति और समाजका क्या सम्बन्ध है? वह कैसा हो तो व्यक्ति और समाज सबके लिअे कल्याणकर और श्रेयस्कर होगा? बध और मोक्षका स्वरूप क्या है?

अिन प्रश्नो और विचारोका ज्ञान केवल ग्रथोके अध्ययन परसे नही परन्तु किसी अनुभवी और विवेकी पुरुषके द्वारा हो यह आवश्यक है। अैसा हो तो अिस मार्गकी बहुतसी अुलझने और परस्पर विसगत प्रश्न आसानीसे हल हो जायगे और साधकका मार्ग सरल बनेगा। साधारण बुद्धिमान, मनुष्य

अिस विषयको अनुभवी पुरुषसे कुछ ही दिनोमे आसानीसे समझ सकता है। अिस विषयका ठीक ज्ञान हो जानेके बाद साधकको योग्य साधन-मार्गकी जरूरत होती है। वह मिल जाय तो अुसका जीवन स्वभावत अुत्तरोत्तर अुन्नत बनता जायगा।

अिस ढगसे जो अपना मार्ग निकालेगा और अुस पर चलेगा, अुसके लिअे यह मार्ग सरल बनेगा, अिसमें कोअी शका नही है। फिर तो अुसके ध्येयमें, विचारोमे और आचारमे कही भी विसगति नही रहेगी। अुसके लिअे कभी भी अुलझनमे पडनेका कारण पैदा नही होगा। मुख्य बात यह है कि साधकका ध्येय काल्पनिक नही, बल्कि सत्य और स्पष्ट होना चाहिये। अुसका साधन पवित्र और सरल होना चाहिये। जीवनका हेतु सिद्ध करते हुअे अुसमे सकुचितता और अेकागीपन नही आना चाहिये, और साधकका जीवन अधिकाधिक व्यापक, पवित्र और अुदात्त बनता जाना चाहिये। और जिन जिन लोगोके विशेष सम्पर्कमे वह आये, अुन पर भी अुसके जीवनकी व्यापकताका, पवित्रताका और अुदात्तताका परिणाम सहज ही होता रहना चाहिये। स्वय साधककी शाति और प्रसन्नता बढती रहनी चाहिये।

मनुष्यको पूर्णता तक ले जानेका सामर्थ्य कर्मयोगमे ही है। बाकीके सारे योग अथवा मार्ग अुसके सहायक और पूरक है। मनुष्यका सच्चा विकास और परीक्षा कर्मयोगमे ही होती है। अिस योगके द्वारा जीवन-सिद्धि साधनेके लिअे किसी समय साधकको अेकान्तमे भी अभ्यास करना पडे तो वह अभ्यास केवल साधन है, साध्य नही। कर्मयोगीका जीवन कर्मसे परिपूर्ण होगा। कोअी तत्त्वज्ञान, विचार, भक्तिका कोअी प्रकार, अनुसधान, ध्यान, समाधि, चित्तलय — अिनमे से कोअी भी अेक वस्तु साधन बन सकती है। परन्तु वह अन्तिम साध्य नही हो सकती। कर्मयोगमे मस्तीकी आवश्यकता नही है। अुसमे मस्तीके लिअे कोअी स्थान नही है। वह न तो साध्य है, न साधन। कर्मयोग और विवेककी दृष्टिसे देखें तो वह कल्पनाकी सहायतासे अपनेमे अेक प्रकारका तात्कालिक नशा पैदा करनेका प्रयत्न है।

कर्मयोगमे प्रवृत्तिको छोडनेकी आवश्यकता नही, बल्कि अुसे शुद्ध करनेकी आवश्यकता है। कर्तव्यको छोडनेकी [illegible] परन्तु अुसे ज्ञानपूर्वक, पूर्वक और शुद्ध चित्तमे करते [illegible] है। हमे अुदात्त कुशलतापूर्वक और निर्दोष [illegible], अिसके लिअे

मस्ती अुत्पन्न करनेसे और अुसे वढाते रहनेमे आत्मस्थिति प्राप्त होगी या नही ? अीश्वरका साक्षात्कार कैसे हो सकता है ? ये ओर अैसे अनेक प्रश्न सामान्यत साधकके मनमे अुठते है। अिन प्रश्नोके सही अुत्तर न मिलनेसे जीवनके कार्यमे अुसे सन्तोपका अनुभव नही होता।

अनेक प्रकारके अुलटे-सीधे सस्कारोके कारण, अनेक प्रकारकी सच्ची-झूठी मान्यताओ, कल्पनाओ और श्रद्धाओके कारण यह विपय वडा अुलझन-वाला बन गया है। कुछ समय तक विवेकी मनुष्यकी जिज्ञासापूर्वक सगति करनेसे अिसमे से मार्ग निकालना कठिन नही है। क्योकि यह विपय अन्य विपयोकी तरह सरल है और अभ्यास तथा अनुभवसे समझमे आने जैसा है। अिसकी विशेपता यह है कि अिसमे अतर्मुख-वृत्ति, विवेक, सयम, दृढता, चित्तशुद्धि, आत्म-परीक्षण, धैर्य, लगन, सद्‌गुणोके विपयमे स्वाभाविक रुचि, प्रयत्नशीलता आदिकी विशेप आवश्यकता होती है। अिस विपयमे श्रेयार्थीको अूपर दिये गये प्रश्नोके यथार्थ अुत्तर प्राप्त करके सारी वाते भलीभाति समझ लेनी चाहिये।

मानव-जीवनका सच्चा हेतु क्या है ? अुस हेतुकी सत्यताकी परीक्षा किस आधार पर और किस ढगसे करनी चाहिये ? यह श्रेयार्थीको समझ लेना चाहिये। जीवनका हेतु केवल काल्पनिक अर्थात् माना हुआ नही होना चाहिये। प्रत्यक्ष प्रमाणसे अुसकी सत्यता साधकके गले अुतर जानी चाहिये। अीश्वर-परमेश्वर, आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म, प्रवृत्ति-निवृत्ति, प्रकृति-माया, त्रिगुण आदिका सच्चा ज्ञान अुसे हो जाना चाहिये। अुसी तरह अुसे यह भी जान लेना चाहिये कि अुपरोक्त विपयोंके ज्ञान-अज्ञानका मानवके सुख-दु.ख, आशा-तृष्णा, वासना, बन्धन, शाति-अशाति, अुन्नति-अवनतिके साथ क्या सम्बन्ध है ? दोनोके बीच सचमुच कोअी सम्बन्ध है या गलत समझके कारण हम अैसा मानते आये है, अिसका निर्णय हो जाना चाहिये। व्यक्ति और समाजका क्या सम्बन्ध है ? वह कैसा हो तो व्यक्ति और समाज सबके लिअे कल्याणकर और श्रेयस्कर होगा ? वध और मोक्षका स्वरूप क्या है ?

अिन प्रश्नो और विचारोका ज्ञान केवल ग्रथोके अध्ययन परसे नही परन्तु किसी अनुभवी और विवेकी पुरुपके द्वारा हो यह आवश्यक है। अैसा हो तो अिस मार्गकी वहुतसी अुलझने और परस्पर विसगत प्रश्न आसानीसे हल हो जायगे और साधकका मार्ग सरल बनेगा। साधारण बुद्धिमान मनुष्य

अिस विपयको अनुभवी पुरुपसे कुछ ही दिनोमे आसानीसे समझ सकता है। अिस विपयका ठीक ज्ञान हो जानेके बाद साधकको योग्य साधन-मार्गकी जरूरत होती है। वह मिल जाय तो अुसका जीवन स्वभावत अुत्तरोत्तर अुन्नत बनता जायगा।

अिस ढगसे जो अपना मार्ग निकालेगा और अुस पर चलेगा, अुसके लिअे यह मार्ग सरल बनेगा, अिसमे कोअी शका नही है। फिर तो अुसके ध्येयमे, विचारोमे और आचारमे कही भी विसगति नही रहेगी। अुसके लिअे कभी भी अुलझनमे पडनेका कारण पैदा नही होगा। मुख्य बात यह हे कि साधकका ध्येय काल्पनिक नही, बल्कि सत्य और स्पष्ट होना चाहिये। अुसका साधन पवित्र और सरल होना चाहिये। जीवनका हेतु सिद्ध करते हुअे अुसमे सकुचितता और अेकागीपन नही आना चाहिये, और साधकका जीवन अधिकाधिक व्यापक, पवित्र और अुदात्त बनता जाना चाहिये। और जिन जिन लोगोके विशेप सम्पर्कमे वह आये, अुन पर भी अुसके जीवनकी व्यापकताका, पवित्रताका और अुदात्तताका परिणाम सहज ही होता रहना चाहिये। स्वय साधककी शाति ओर प्रसन्नता बढती रहनी चाहिये।

मनुष्यको पूर्णता तक ले जानेका सामर्थ्य कर्मयोगमे ही है। बाकीके सारे योग अथवा मार्ग अुसके सहायक और पूरक है। मनुष्यका सच्चा विकास ओर परीक्षा कर्मयोगमे ही होती हे। अिस योगके द्वारा जीवन-सिद्धि साधनेके लिअे किसी समय साधकको अेकान्तमे भी अभ्यास करना पडे तो वह अभ्यास केवल साधन हे, साध्य नही। कर्मयोगीका जीवन कर्मसे परिपूर्ण होगा। कोअी तत्त्वज्ञान, विचार, भक्तिका कोअी प्रकार, अनुसधान, ध्यान, समाधि, चित्तलय — अिनमे से कोअी भी अेक वस्तु साधन बन सकती है। परन्तु वह अन्तिम साध्य नही हो सकती। कर्मयोगमे मस्तीकी आवश्यकता नही हे। अुसमे मस्तीके लिअे कोअी स्थान नही हे। वह न तो साध्य है, न साधन। कर्मयोग और विवेककी दृष्टिसे देखे तो वह कल्पनाकी सहायतामे अपनेमे अेक प्रकारका तात्कालिक नशा पैदा करनेका प्रयत्न हे।

कर्मयोगमे प्रवृत्तिको छोडनेकी आवश्यकता नही, बल्कि अुसे शुद्ध करनेकी आवश्यकता है। कर्तव्यको छोडनेकी नही, परन्तु अुसे ज्ञानपूर्वक, दृढतापूर्वक ओर शुद्ध चित्तसे करते रहनेकी आवश्यकता हे। हमे अुदात्त भावसे, कुशलतापूर्वक और निर्दोप रूपमे कर्तव्य करना आये, अिसके लिअे शारीरिक,

वौद्धिक और मानसिक गुणोका विकास आवश्यक हे। जो वातें कर्तव्य नही मानी जा सकती और जो हमे अवनतिकी ओर ले जानेवाली है, वे केवल परम्परा या गलत ज्ञान और श्रद्धाके कारण हमारे भीतर चाहे जितनी दृढ हो गअी हो तो भी अुन्हे छोड़ देना चाहिये। अिसके लिअे आवश्यक धैर्यकी और अुन्नतिके लिअे व्याकुलताकी आवश्यकता है।

पत्र, ३०–३–'४२

१६

निराग्रहका कारण

अनेक सस्कारो और विचारसरणियोके वारेमे मेने पहले जो पत्र लिखा था अुस परसे और आपके यहा आने पर हमारी जो थोडी वातचीत हुअी थी अुस परसे मालूम होता है कि आप वहुत विचार करते है।

मुझमे आपके लिअे आग्रह-वृत्ति नही है, फिर भी यह नही कहा जा सकता कि मै आपका कल्याण नही चाहता। आपमे तीव्र जिज्ञासा है। अुसी तरह मै यह भी जानता हू कि आपके भीतर जीवनमे सर्वोच्च ध्येय सिद्ध करनेकी व्याकुलता है। मुझमे आग्रह नही है, अिसका अेक कारण यह भी होगा कि अपनी विचारसरणीसे भिन्न विचारसरणीको मै कभी अेकाअेक अमान्य नही करता। कोअी भी विचारसरणी न्यायप्रधान होनी चाहिये। सारासार विचारको — विवेकको — अुसमे महत्त्व दिया जाना चाहिये। मेरा आग्रह अितना ही है कि वह विचारसरणी जीवनमे अुत्साह और प्रसन्नताकी, कर्तृत्व और सतोपकी, ज्ञान और तेजस्विताकी, कर्मकौशल और विरागकी, भावना और अलिप्तता आदि गुणोकी वृद्धि करनेवाली होनी चाहिये। मेरे मनमे यह तर्क अुठता है कि मनुष्य जब अुद्विग्न होता है, अुदासीन या निराश होता है, तब अुसके विचार या आचारमे कही न कही कोअी भूल होनी चाहिये। अुस भूल — दोष — को दूर किये बिना अुसका कुंठित वना हुआ मार्ग कभी खुल नही सकता। अुस भूलको खोज निकालनेके लिअे अैसे मनुष्यके थोडे सहवासकी और अुसके मनके शोधनकी–परीक्षणकी आवश्यकता होती है। अैसा अवसर आये बिना मै अुसके विषयमे कुछ कह नही

सकता। अिसलिअे अुस समय तक मै किसी भी बातका अेकदम आग्रह नही कर सकता।

भिन्न सस्कार और विचारसरणीके विषयमे मैंने जो कुछ लिखा है, अुस परसे आप आत्म-निरीक्षण करके देखे। अपनी ओरसे तो मै प्रयत्न करूगा ही। मै आपके विषयमे अुदासीन नही हू। मै स्वय ही अुस सबधमे कुछ विचार कर रहा हू। अिसके सिवा, कोअी विषय अैसा भी हो सकता है, जिसका मुझे कोअी अनुभव नही होता। केवल तर्क, कल्पना और दूसरोकी स्थिति देख-सुनकर किये हुअे अनुमान ही होते है। अिन परसे विचारोका कुछ मेल बैठाना पडता है। अिसे कभी पूर्ण सत्य नही माना जा सकता।

मेरे लिखने या बोलनेसे आपका दु:ख बढना नही चाहिये। अपने अनुभव और बुद्धिका पूर्ण अुपयोग करके आपकी शातिका मार्ग खोजनेमे आपको सहायता करनेका मेरा हेतु सदा कायम रहेगा।

पत्र, २०-६-'३७

१७

कर्म ही साधना है

कर्ममार्गके आचरणसे मनुष्यकी चित्तशुद्धि होती रहे, यही सरल ओर अुचित वस्तु है। यही सच्चा मार्ग हे। भक्तोने परमेश्वरकी प्राप्तिका ओर भक्तिका अेक अलग ही मार्ग निकाला। अुससे किसी किसी गुणका सहज ही अुत्कर्ष होता हे। अिसमे कोअी शका नही कि अुस मार्गमे अीश्वरीय प्रेमके अुद्रेकमे भक्तोको आनन्दकी प्राप्ति भी होती हे। परन्तु अुस मार्गमे कितने ही अज्ञान, झूठी कल्पनाओ और भ्रमोकी वृद्धि भी हुअी हे। अिसके बदले अीश्वरीय प्रेम और भक्तिका आश्रय लेकर मानवीय गुणोकी अुपासना और अुनका सवर्धन होता रहे, तो अुसमे भ्रम अुत्पन्न होनेका अवकाश नही रहेगा। कर्मयोग द्वारा सपूर्ण मानवता प्राप्त करनेका प्रयत्न करते रहना ही मानव जीवनका मुख्य अुद्देश्य हे ओर वही सच्ची जीवन-सिद्धि हे, यह बात पूरी तरह मनुष्यके गले अुतर जाय, तो कितने ही भ्रम दूर हो जायगे और जीवन सरल कर्ममार्गी बन जायगा। सन्त तुकारामने जो भक्तिमार्ग स्वीकार

किया था, अुसमे अुन्हे अनेक कष्ट सहन करने पडे। अिसका कारण अुस मार्गमे रहे अनेक भ्रम ही थे। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, अवतार, मूर्तिमे अीश्वर-भावना, अीश्वर-दर्शन, साक्षात्कार—ये सब कल्पनायें है। अिन कल्पनाओमे आनन्द भी है और दुःख भी है। मनुष्यमे विवेक जाग्रत हो और विवेक-बल वढने पर अुसमे कुशाग्रता भी आ जाय, तो ही वह अिन सब कल्पनाओसे मुक्त हो सकता है। मुक्त होनेके बाद भी चित्तकी सात्त्विकता और प्रेमवृत्ति नष्ट न हो तो अुसमे से मनुष्यको आनन्द भी मिल सकता है।

कर्ममार्गमे जैसे-जैसे निरपेक्षता आती जायगी, वैसे-वैसे दूसरोके लिअे हमारे चित्तमे मैत्री, प्रेम, करुणा, अुदारता आदि भाव वढते जायेंगे। जिस हद तक हमारे कर्म निर्दोष वनेंगे, अुस हद तक चित्तकी शुद्ध अवस्था स्थायी वनेगी। मैत्री, प्रेम आदि गुणोसे ही समभावकी प्रतीति होती है। चित्तकी शुद्धावस्था और समभावसे ही जीव-दशाकी शुद्धि होती है और शिवके साथ हम अेकरूपता सिद्ध कर सकते है। जब तक चित्तकी शुद्धि और समभाव हमारा स्वभाव नही वनते, तब तक मनुष्यने स्वयको केवल अमर समझ-कर जीव-शिवका अैक्य साध लिया, अैसा माननेमे कल्पनाका, भावनाका काफी भाग रहेगा। अिसकी अपेक्षा अूपर वताये अनुसार कर्मकी निर्दोपता और निरपेक्षता सिद्ध हो, तो जीव-दशाकी सहज ही प्रत्यक्ष शुद्धि होकर समभावसे आत्मभावकी भी प्रत्यक्ष वृद्धि होगी और मानवताकी परम सिद्धि प्राप्त की जा सकेगी। अिसमे काल्पनिकता नही है। आजकी स्वीकार की हुअी कल्पना या भावनाको कल छोड़नेकी आवश्यकता नही है। स्वयको अनिश्चित रूपमे कभी जीव, कभी मनुष्य, कभी आत्मा, कभी अीश्वर, कभी मर्त्य, कभी अमर, कभी सगुण, कभी निर्गुण, कभी साकार, कभी निराकार कहते रहनेकी आवश्यकता नही होगी।

पत्र, २२–११–'४१

१८

ओीश्वर-निष्ठाका अुपाय

आपका पत्र मिला। अुसमे पूछा हुआ आपका प्रश्न मैं समझा। मेरी लिखी बात आपकी समझमे आती है, यह जानकर आनन्द होता है। समझनेके बाद अुसे कार्यका रूप देना बाकी रहता है। अुसे आचरणमे अुतारें तभी अुसके समझनेका कोओी अुपयोग है। वर्ना अुससे क्षणिक बौद्धिक आनन्दके सिवा और कुछ मिलनेवाला नही है। समझकर अुसके अनुसार अपना जीवन बनाये, तो ही हमारा जीवन सार्थक कहा जायगा। आप अिस प्रयत्नमे होंगे ही।

मै समझता हू कि आपका प्रश्न यह है ओीश्वर-निष्ठाकी प्राप्ति कैसे की जाय? अुसकी प्राप्तिके लिअे कोओी अेक निश्चित मार्ग नही बताया जा सकता। परन्तु ओीश्वर-निष्ठा निर्माण होनेके लिअे किस प्रकारका मन चाहिये, अिस विषयमे जरूर कुछ कहा जा सकता है। जिस किसी भी मनुष्यके मनमे ओीश्वर-निष्ठा निर्माण नही हो सकती। केवल ओीश्वरका नाम लेते रहनेसे या अुसके निमित्तसे किसी विधि-विधानका पालन करते रहनेसे मुझमे ओीश्वर-निष्ठा है, अैसा कोओी समझे तो वह ठीक नही है। सच्ची निष्ठा निर्माण होनेके लिअे मनुष्यका मन कुछ अंशमे सात्त्विक होना चाहिये। और सात्त्विक कर्मकी ओर अुसका स्वाभाविक झुकाव होना चाहिये। अैसे ही मनुष्यके मनमे ओीश्वर-निष्ठा जाग्रत हो सकती है, जाग्रत रह सकती है और अुसकी वृद्धि भी हो सकती है। अिस सृष्टिमे ओीश्वरके कुछ कानून है। अपनी तात्कालिक लाभ-हानिका विचार न करके जिस मनुष्यकी वृत्ति स्वभावतः ओीश्वरीय कानूनोके पालनकी ओर होती है, अुसका मन अवश्य सात्त्विक होना चाहिये। 'दासबोध' के दशक २, समास ७ मे सत्त्वगुणके लक्षण दिये गये है, अुन्हे आप देखिये। अुससे सात्त्विकताके अनेक लक्षण आपके ध्यानमे आयेंगे। यह समझनेमे कोओी हर्ज नही कि प्रेम, दया, अुदारता, न्याय, परोपकार, प्रामाणिकता, कर्तव्य आदि वृत्तियो और सद्भावनाओंका थोडा भी अंश जिसके चित्तमे है, और अुनके अनुसार जो आचरण करता है, अुसमें सात्त्विकता है। अिसके विपरीत यह माननेमे भी कोओी हर्ज नही कि जिस मनुष्यमे केवल स्वार्थ, दुष्टता, कठोरता, ओीर्ष्या, कपट, अप्रामाणिकता और

क्रोधकी वृत्तियां मुख्यत काम करती है, अुसमें सात्त्विकता नही है और वह अीश्वरके कानूनो अर्थात् धर्ममे विश्वास नही रखता। सात्त्विक वृत्तिका मनुष्य अपनी वृत्तिसे अीश्वरके कानूनोका — धर्मका — पालन करता हो, तो भी अुसके सद्वर्तनका अुत्तर दूसरे लोग दुष्टतासे नही देते अथवा अुसमें कोअी द्वेष नही रखता, अैसी बात नही है। अैसे समय साधारण सात्त्विक मनुष्यको अपने धर्मके विषयमे — सद्वर्तनके विषयमें शंका होती है। परन्तु अैसे समय अपने मनमे यदि वह अीश्वरके विषयमें निष्ठा जाग्रत करे अथवा आरंभसे अपने भीतर रही निष्ठाको दृढ बनावे, तो ही अुसके बल पर वह सात्त्विक मार्ग पर टिक सकता है। धर्म अुसका आचरण करनेवालेके तात्कालिक बाह्य लाभके लिअे नही, परन्तु अुसके और दूसरोके स्थायी कल्याणके लिअे है, मानव-जातिके कल्याणके लिअे है। और अिस हेतु पर टिके रहनेके लिअे किसी महान तत्त्व पर अथवा किसी महान शक्ति पर हमारी निष्ठा होनी चाहिये, अैसा जिसे लगता होगा अुसीके मनमे अीश्वर-निष्ठा जाग्रत होगी, टिक सकेगी और वृद्धिगत होगी। विपरीत अवसरो पर अपनी सात्त्विकताको कायम रखनेके लिअे किसी महान धर्म पर, महान तत्त्व पर या जगत्की महान अज्ञात शक्ति पर मनुष्यकी निष्ठा होनी चाहिये। अिसके बिना अुसकी सात्त्विकता टिक नही सकती। वह निष्ठा अीश्वरके रूपमे मानी हुअी महान शक्ति पर हो, पूर्वकर्म पर हो अथवा जगत्के कल्याणके महान हेतु पर हो। परन्तु किसी भी महान तत्त्व या हेतु पर निष्ठा रहे बिना प्रतिकूल प्रसगोमे मनुष्य अपनी सात्त्विकता टिकाये रखनेमे समर्थ नही हो सकता। अैसा करनेके लिअे किसी न किसी स्थान पर मनुष्यकी पवित्र और दृढ निष्ठा होनी ही चाहिये। जिन लोगोमे अैसी निष्ठा नही होती, अथवा प्रतिकूल प्रसगो पर जिन्हे निष्ठा जाग्रत करनेकी बात नही सूझती या जो अुसे जाग्रत नही कर सकते, वे लोग अैसे ही प्रसंगो पर गलत मार्ग पर मुडे हुअे देखे जाते है। वे अपनी सात्त्विकता खो बैठते है। अिसलिअे मनुष्यमे दृढ निष्ठा होनी चाहिये। और निष्ठा किसी महान तत्त्व, शक्ति या वस्तु पर ही बैठ सकती है। अैसी निष्ठा सद्वाचन, विवेक, सहवास और जीवन-सबधी शुद्ध और अुदात्त हेतुसे हमारे भीतर जाग्रत हो सकती है और कठिन मौको पर धैर्य धारण करनेसे तथा जीवन-विषयक अुदात्त हेतुकी महत्त्वाकाक्षा रखनेसे टिक सकती और बढ़ सकती है।

आप सदा वाचन और मनन द्वारा जीवनको सुधारनेका प्रयत्न करें। शुरूसे आखिर तक जीवनमें निर्दोषता सिद्ध करनेकी ही दृष्टि रखें। परमात्मा आपका शुद्ध हेतु पूर्ण करे।

पत्र, फरवरी, १९५२

१९

चित्तके अभ्यासकी आवश्यकता

आपके पत्रकी बातें पढकर दुःख हुआ। आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, वजन घट गया है, कमजोरी बहुत आ गओी है, आराम लेना आवश्यक होने पर भी अैसा करना अुचित नहीं लगता, देशकी अत्यन्त निराशाजनक स्थितिका भी आपके मन पर असर होता है, जीवन कभी-कभी भाररूप मालूम होता है, आदि सब बातें चिन्ताजनक हैं।

जीवनका अन्त तो कभी न कभी आने ही वाला है। अुसके पहले मनुष्यको क्या सिद्ध करना है? मुझे लगता है कि मनुष्य यदि मनकी निर्मलता, अलिप्तता और अुदात्तता सिद्ध कर सके, प्रसन्नतापूर्वक अुसका कर्मयोग चलता रहे, तो अुसे जीवनमें कृतार्थताका अनुभव हुअे बिना नहीं रहेगा। केवल बाह्य परिस्थिति और बाह्य सफलतामें अैसी कृतार्थताका हम निर्णय करें तो असमें भूल होनेकी संभावना है। परन्तु प्रत्येक कर्ममें अपनी चित्तशुद्धि और अपने सद्‌गुणोंके पूर्ण विकासकी दृष्टिसे कर्मकी और जीवनकी सफलता सिद्ध करनेका हमारा प्रयत्न हो, तो अूपर बताअी कृतार्थता हम प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु अिसके लिअे हमें कोअी नियमित साधन रखना चाहिये। जिस प्रकार शरीरको स्वच्छ, नीरोग और सुदृढ रखनेके लिअे रोज स्नानकी, आरोग्यवर्धक, नियमित और परिमित खान-पानकी और व्यायामकी जरूरत होती है, अुसी प्रकार चित्तकी निर्मल और स्थिर अवस्था और प्रसन्नता बनाये रखनेके लिअे चित्तके नियमित अभ्यासकी भी हमें आवश्यकता है। अिसके साथ चित्तकी स्वस्थ या अस्वस्थ अवस्थाके अनुसार अभ्यासकी मात्रा घटाने-बढानेकी भी जरूरत रहेगी।

अिस प्रकार अपने चित्तको जैसा चाहिये वैसा बनाने और रखनेका प्रयत्न किये बिना हमारा काम नही चलेगा। हमे दु:खमे और पश्चात्तापमें डालनेवाली अनिष्ट, अयोग्य और अवाच्छनीय तरगे हमारे चित्तमे न अुठें, और अुठे तो अुन्हे आसानीसे दूर किया जा सके, अैसी शक्ति हममे चित्तके अभ्यासके बिना नहीं आ सकती। चित्तको शुद्ध रखनेके लिअे भी प्रतिदिनके स्नानकी तरह ही अिस प्रकारके अभ्यासकी आवश्यकता है। हम अपने शरीरको अस्वच्छतासे बचानेका चाहे जितना प्रयत्न करें, तो भी कुदरती तौर पर शरीरसे बाहर निकलनेवाली मलिनतासे और बाहरकी धूल, कूडा-करकट आदिसे हमारा शरीर प्रतिदिन अस्वच्छ हो ही जाता है और प्रतिदिन स्नानादि क्रियाओ द्वारा हमे अुसे स्वच्छ रखना पडता है; अुसी तरह हम अपने मनको स्वच्छ रखनेका चाहे जितना प्रयत्न करे, तो भी अुस पर भीतरी सस्कारो और बाह्य कर्मोका मल चढता ही रहता है और अुस मलका नाश करनेके लिअे हमे नित्य तत्सम्बन्धी कोअी विशेष प्रयत्न करना चाहिये। प्रत्येक वस्तु पर सृष्टिके सूक्ष्म द्रव्य अपना कार्य करते रहते है। अुसी प्रकार चित्त पर भी अन्तर्बाह्य परिणाम अुत्पन्न करनेवाले कार्य सृष्टिके नियमोके अनुसार सदा जारी रहते है। अिसलिअे हमे अपने चित्तके विषयमे सदा पूर्ण जाग्रत रहकर प्रयत्नशील रहना चाहिये। आपकी वर्तमान शारीरिक और मानसिक स्थितिको देखते हुअे यदि आप किसी स्थान पर कुछ दिन भी स्वस्थतासे रहे और मनको स्थिर रखनेके लिअे थोडा अभ्यास करे, तो आपको दोनो दृष्टियोसे काफी लाभ होगा। आपके शरीर और मनमे थोडा-बहुत सुधार तो होगा ही। अिस सुधारकी आपको बडी आवश्यकता है। आपकी वर्तमान स्थिति अिसी प्रकार जारी रही, तो शरीरके साथ आपके मनकी अस्वस्थता भी बढ सकती है। अतः अिस विषयमे आप अवश्य विचार कीजिये। जीवनमे जो वस्तु सिद्ध करना जरूरी है, अुसे हम सिद्ध न करे तो यह सारा आडंबर किस कामका? वह आडम्बर कभी अुत्साह-जनक तो कभी निराशा-जनक और भाररूप लगने ही वाला है। जीवनकी सार्थकताकी दृष्टिसे हम अिस स्थितिको अुचित नही मानते।

२०

सरल और स्पष्ट तत्त्वज्ञान

आप जानते हैं कि आत्म-सतोष, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, शाति, मोक्ष आदि विषयो पर मैं किस दृष्टिसे विचार करता हू। सात्त्विकता और सद्-गुणोंकी वृद्धि होती रहे अिसीमे मानवता है। मनुष्य-मनुष्यके बीच मित्रता, प्रेम, बन्धुभाव, वात्सल्य और समभावकी वृद्धि होती रहे, अिसीमें मनुष्य-मात्रका कल्याण है। अिसीमे मानव-जीवनकी सिद्धि है। अुसे सिद्ध करनेके लिअे वाचन और मनन तथा सयम, भक्ति, त्याग, योग, ज्ञान, कर्म आदि साधनोंकी आवश्यकता है। अिस बातको यदि मनुष्यकी बुद्धि स्वीकार कर ले, तो कितनी ही भ्रामक कल्पनाये, निष्कारण आडम्बर और त्रास नष्ट हो जाय और अुनके कारण होनेवाले आयु, धन और शक्तिके निरर्थक व्ययसे मनुष्य बच जाय।

अब आपके ४ तारीखके पत्रके विषयमे कुछ बाते लिखता हू। प्राचीन ग्रंथोंमें से अपने अनुकूल अर्थ निकालनेके विषयमें आप मेरा मत जानते हैं। तत्त्वज्ञानके बारेमें सरल और जीवनोपयोगी विचार हमें नही सूझते। किसी समय तात्त्विक और धार्मिक मानी गअी विचारसरणीको ही अुलट-पलट कर या अुसीको रसमय और मनोरजक बनाकर या अुसे भिन्न रूप देकर अपने और दूसरोंके मनको सतोष देनेका हमारा प्रयत्न होता है। अपने विचार, आचार, मानव-जीवन सबधी अतिम सिद्धान्त और मानव-जातिके कल्याण आदि बातोंमे हमें थोडा भी मेल साधते आता है? यही हमारे सामने मुख्य प्रश्न है। अिसके लिअे मानव-जीवनका हेतु निश्चित रूपसे हमारे ध्यानमें आना जरूरी है। और अुसी हेतुको मुख्य और सच्चा क्यों मानना चाहिये, यह वस्तु व्यवस्थित, स्पष्ट और सुसगत विचारसरणी द्वारा हमारे ध्यानमें आनी चाहिये और दूसरोंको भी समझाते आना चाहिये। वह हेतु हमारे ध्यानमे आवे, अिसके लिअे हमें सब ओरसे जीवनका सूक्ष्म विचार करना आना चाहिये। मुझे लगता है कि अिन सब बातोंका समावेश तत्त्वज्ञानमें हो सकता है। तत्त्वज्ञानमें अधिक गूढता नही होनी चाहिये। केवल तर्क और अनुमानकी सूक्ष्मता, कल्पनाकी अुडान और कल्पनाके मनोरम विहार पर हमारे तत्त्वज्ञान या विचारसरणीका निर्माण

नही होना चाहिये। हमारी विचारसरणी सरल और स्पष्ट होनी चाहिये। वह समझनेमे सुलभ और अनुभवजन्य होनी चाहिये। हमारा आचार-धर्म और जीवनका अतिम साध्य — अिन दोके बीच अितना मेल होना चाहिये कि सदाचार-युक्त जीवनसे हमारे अतिम हेतु और सिद्धान्तोका दर्शन तथा पहचान हमे सदैव होती रहे, अुनकी सत्यताका अनुभव हमे प्रतिदिनके जीवनमे होता रहे। हमारी विचारसरणीसे सद्भावना-युक्त कर्माचरणका और अिस कर्माचरणसे मानव-जीवनका मूलभूत हेतु सिद्ध करनेका मार्ग बतानेवाले तत्त्वज्ञानका निर्माण होना चाहिये।

आप मुझसे मिले थे तब मैंने आपसे कहा था कि सर्वसाधारण लोगोका तत्त्वज्ञानसे कोअी सबध नही होता। जो लोग जिज्ञासु और विचार-शील होते है, अुन्हीको तत्त्वज्ञानकी जरूरत महसूस होती है। सर्वसाधारण लोगोको सदाचारका महत्त्व समझमे आ जाय तो बस है। परन्तु अुपरोक्त ढगसे धर्म और तत्त्वज्ञानका विचार किया जाय, तो अैसे तत्त्वज्ञानको साधारण लोग भी समझ सकते है। हमारे तत्त्वज्ञानमे विशेषत सृष्टिकी अुत्पत्तिका विचार और आत्मा तथा ब्रह्मका निरूपण किया गया है। मुझे नही लगता कि निरूपण-कर्ता अिस निरूपणका सबंध मनुष्यके सुख-दुःखके साथ जितना मानते है अुतना वास्तवमे है। कोअी निरूपण-कर्ता 'तू कौन ?' जानने पर भार देता है तो कोअी आत्म-दर्शन पर; कोअी भक्ति पर, कोअी ब्रह्मज्ञान पर और कोअी मोक्ष पर भार देता है। परन्तु अिनमे से अेक भी बात मुझे पूर्ण नही मालूम होती। मुझे लगता है कि शरीर, बुद्धि और मनका योग्य विकास, सद्भावनाओ और सद्गुणोका अुत्कर्ष, सब दृष्टियोसे अुपयोगी कार्यक्षमता तथा कर्तृत्व, चित्तशुद्धि और विवेकशीलता आदि सभी बाते हमारे जीवनमे सिद्ध हो — ज्ञान, सद्भावना और अुचित कर्मका सुमेल हमे साधते आवे, तो ही मानव-जीवन सफल हो सकता है। अुसीमें जीवनकी पूर्णता है। हमे अैसी विचारसरणीकी आवश्यकता है, जो अिन सब विषयोको स्पष्ट और सुसंगत रूपमे हमे बता सके और समझा सके। अुसमें मानव-जातिके कल्याणका व्यापक दृष्टिसे विचार किया जाना चाहिये। अुसके विचार जीवनके प्रत्यक्ष अनुभवसे निकले होने चाहिये। मेरी अैसी अिच्छा और अभिलाषा है।

पत्र, ८–४–'४२

२१

ज्ञान, भावना और कर्मका सुमेल

आपके सब पत्र मिल गये हैं। आज मुख्यत आपके १४ तारीखके पत्रको ध्यानमे रखकर यह पत्र लिख रहा हूं। अपने पत्रमे आपने ज्ञान, भक्ति, कर्म, चित्तशुद्धि, प्रज्ञा, साधन, सर्वांगीण विकास आदि विषयो पर खूब विस्तारसे लिखा है और प्रश्न पूछे हैं। मेरा कहना, मेरे विचार आदि जितने आपकी समझमे आये हैं, अनुभवमे आपके गले अुतरे हैं, अुसी परसे आपने यह सब लिखा है।

केवल चित्तशुद्धि यानी अशुद्ध वृत्तियोंके नाश, अशुद्ध कार्योंके त्याग और प्रज्ञाकी प्राप्तिसे मानव-जीवन पूर्ण नही बन सकता। जब तक चित्तकी शुभ वृत्तियोका अुचित कर्मो द्वारा प्रकटीकरण होकर हमारा सर्वांगीण विकास नही होता, तब तक समझना चाहिये कि जीवनकी सम्पूर्णता सिद्ध नही हुअी है। अुसकी सिद्धिके लिअे ज्ञान, सद्भावना और योग्य कर्मके सिवा अन्य कोअी मार्ग नही है। केवल अशुद्धियोके त्यागसे हमारी सारी शक्तियोकी शुद्धि-वृद्धि नही हो सकती। अिस प्रकारकी शुद्धि-वृद्धिके लिअे आवश्यक आचरण ही हमारा धर्म है। यह धर्म और मानवके कर्तव्य अलग-अलग नहीं हो सकते। अिसमें कल्पना, तर्क, अभ्यास आदिके लिअे स्थान नही है।

'चैतन्यकी प्रतीति' तो प्रत्येक मनुष्यको सदा होती ही है। अिसे समझ लेना भी पूर्णताका लक्षण नही है। 'अहं' के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भानसे लेकर देहके सारे व्यवहारोमे चैतन्यकी प्रतीति होने और संपूर्ण विश्वका व्यापार चैतन्यका ही विस्तार है अैसी कल्पनाके दृढ होनेसे भी यह नही माना जा सकता कि मानव-जीवन पूर्णताको पहुंच गया है। ज्ञानके साथ सद्भावना और योग्य कर्मका होना आवश्यक है। अिसके बिना हमारी सारी शक्तियोकी शुद्धि और वृद्धि नही हो सकती। क्योंकि ज्ञानके साथ यदि कर्म न हो तो ज्ञान केवल कल्पना, भावना अथवा तर्क बनकर रह जायगा। और भक्ति-भावनाके साथ ज्ञान और कर्म न हो, भावनाके अुद्भवके साथ अथवा

अुसके थोडे समय पश्चात् अनुरूप कर्मके बिना अुसका लय होता हो, तो भक्ति-भावना भी निष्फल और अनुपयोगी ही सिद्ध होगी। कर्म ज्ञान और सद्भावनापूर्वक न किया जाय, तो अुससे भी कर्म-जडता अुत्पन्न होगी और वह केवल कर्मकाण्डका रूप ले लेगा; और यह कर्म-जडता तथा कर्मकांड हमारी प्रगतिमे बाधक होगा। अिसलिअे ज्ञान, सद्भावना और अुचित कर्म अिन सबका सुमेल हमारे विकासके लिअे बहुत आवश्यक है। जिन कर्मोंमे हमें अैसा सुमेल साधना आयेगा, अुन कर्मोंको हम निर्दोप रूपमे कर सकेंगे। अिन तीनोका अैसा अन्योन्य संबंध है कि परस्पर सहायता और वृद्धिके आधार पर तीनोंका विकास होता रहता है। निर्दोप कर्मो द्वारा होनेवाले अनुभवसे हमारे पूर्वज्ञानमे वृद्धि होती है। अिसी प्रकार कर्मशुद्धिसे भावनाओंकी भी शुद्धि और वृद्धि होती है। अिस तरह बढते जानेवाले ज्ञानके कारण तथा विशेप शुद्ध और विकसित होती हुअी भावनाओके कारण भविष्यके हमारे कर्मोंमे भी अधिकाधिक परिशुद्धि, कुशलता और प्रभाव अुत्पन्न होता है। अिस प्रकार ज्ञान, सद्भावना और कर्मोंकी शुद्धि और वृद्धि होती रहे, तो अिन सबके परिणामस्वरूप अपने सारे कर्मोंमे हमे यश मिलेगा। ज्ञान, सद्भावना और कर्मके सतत चलनेवाले तथा अेक-दूसरेके सामर्थ्यको बढानेवाले चक्र, अुसके धर्मो और परिणामोको जानकर हम चले, तो हमारा जीवन दिनोदिन समृद्ध बनेगा। अिन सबके अन्योन्य संबंध, सहायता और विकासको समझकर अिनका सुमेल साधा जा सके, तो ज्ञान, भावना और कर्ममे से किसीकी भी अेकांगिता हममे नही रहेगी। हमारा जीवन सब दृष्टियोसे निर्दोप और प्राणवान बनता जायगा और जीवनकी अंतिम सिद्धि भी अुससे हम प्राप्त कर सकेंगे।

पत्र, ३–११–’४५

२२
मानवीय गुणोंकी साधना

जीवनके ध्येयके विपयमे अनेक वार हमारे वीच चर्चा हो चुकी है। अुस परसे आप अिस विपयके मेरे विचार सामान्यत जानते होगे। मुझे लगता है कि मानव-जीवनका ध्येय आजीवन प्रयत्न करके मानवीय सद्-गुण प्राप्त करना है। अिन सद्गुणोकी प्राप्तिके लिअे भक्ति, योग, ज्ञान, कर्म आदि साधनोमे से जिन-जिन सावनोकी जितनी आवश्यकता मालूम हो अुतना अुनका अुपयोग मनुष्यको करना चाहिये। अिन साधनो द्वारा यह हेतु सिद्ध हो तो ही कहा जायगा कि अुनका ठीक अुपयोग हुआ है। मनुष्यको आन्तर और वाह्य साधनो द्वारा सद्गुण प्राप्त करके मानवता सिद्ध करनी है। ध्यान, जप, अशुभ वृत्तियोका निरोध और क्षय, विवेक, तारतम्य, ज्ञान तथा दया, मैत्री, वात्सल्य, प्रेम, धैर्य, सत्यता, अुदारता आदि भावनाओंकी वृद्धि और शुद्धि-सवधी सूक्ष्म विचार जैसे आन्तर सावन और भजन, वाचन, प्राणायाम तथा शुद्ध सात्त्विक भावना-युक्त अुचित कर्म जैसे वाह्य साधन —— अिन सवकी सहायतासे मनुष्यको अपनी अुन्नति करनी है। अैसी अुन्नतिमे मै शारीरिक, वौद्धिक और मानसिक तीनो अगोके विकासका समावेश करता हू। तीनो अगोके अुचित विकासके लिअे तीनो प्रकारके अभ्यास और प्रयत्नकी आवश्यकता है। हमारा विकास और हमारी परीक्षा कर्ममार्गमे ही होगी। जीवनमे जो छोटे-वडे कार्य मनुष्यको करने पडते हैं, अुनके द्वारा ही अुसकी मनुष्यताका दर्शन होता है। कर्ममे कुशलता, व्यवस्थितता, नियमितता, चपलता आदि शारीरिक गुण है। योजना-शक्ति, कल्पना-शक्ति, औचित्य आदि वौद्धिक गुण है। और सहृदयता, प्रामाणिकता, धार्मिकता, कर्तव्य-निष्ठा, सत्यता, करुणा आदि मानसिक गुण है। प्रत्येक कार्यमे कम-अधिक मात्रामे तीनो प्रकारके सद्गुणोकी आवश्यकता होती है। और अुन सवकी यथा-योग्यता, औचित्य तथा सवके सुमेल आदिसे मनुष्यके विकासकी परीक्षा होती है।

अिस विचार तथा अिस दृष्टिको भलीभाति समझकर हम अपना जीवन वितानेका प्रयत्न करे, तो हमारे लिअे निराशाका कोअी कारण न

रह जायगा। अिस प्रयत्नमे हमे जीवनके अंतिम क्षण तक भी पूर्ण सिद्धि न मिले तो कोअी हर्ज नही। हमे जाग्रत रहकर केवल अितना ही देखते रहना चाहिये कि हम अपने-आपको तथा हमारे सम्पर्कमे आनेवाले दूसरे मनुष्योको अिसी ध्येयकी ओर ले जानेका प्रयत्न करते है या नही, अपनी शक्ति और बुद्धि, अपना सर्वस्व, सदा अिसी मार्गमे खर्च करते है या नही। मनुष्यको कभी पूर्ण मानवता प्राप्त हो सकेगी या नही, अिस विषयमे आज हम कुछ नही कह सकते। फिर भी, हमारी शुद्ध बुद्धिको मनुष्यके ध्येयके रूपमे जो भी निश्चित रूपसे सही मालूम होता हो, अुस ध्येयके पथिक बने रहना ही हमारा कर्तव्य है। जन्म, ज्ञान, संस्कार, परिस्थिति आदि द्वारा मानवताकी जो विरासत हमे प्राप्त हुअी है, अुसे यथाशक्ति बढाकर हमे भावी पीढीके लिअे छोड जाना चाहिये। मानवताकी पूर्णता सदा-सर्वदा अिसी मार्गसे और अिसी क्रमसे सिद्ध होनेवाली है। यह कार्य अेक व्यक्तिका अथवा अेक पीढीका नही है; मनुष्य-जातिकी अनेक पीढियोके प्रयत्नसे यह कार्य सिद्ध होगा। अिस विषयमे हमारी अैसी श्रद्धा होनी चाहिये।

शरीर, बुद्धि, मन, प्राण, चैतन्य आदि सबके जिस अेकत्र समूहको हम 'मै' के रूपमे समझते और पहचानते है, वह 'मै' अिस अनन्त विश्वमे, मानव-जातिमे अणुके समान है। अुस अणुको भी अपने पर आये हुअे विकास-कार्यको जीवनभर सपूर्ण शक्ति लगाकर निष्ठापूर्वक करते रहना चाहिये और जीवनके अतिम क्षणमे अर्थात् अुस 'मै' के लुप्त होते समय (मृत्युके समय) अपनी सात्त्विकताकी सारी कमाअी मानव-जातिको अर्पण कर देनी चाहिये। मनुष्य वास्तवमे अितना ही कर सकता है। और अिस प्रकार अन्तमे परमात्मामे विलीन होकर समरसताका सन्तोष प्राप्त कर सकता है। अितना करके अुसे सन्तोष मानना सीखना चाहिये। क्योकि, जैसा अूपर कहा गया है, पूर्ण मानवता सिद्ध करना अेक पीढीका काम नही है, बल्कि मनुष्य-जातिकी अनेक पीढियोके सात्त्विक परिश्रमका सयुक्त कार्य है।

मनुष्यको जिस प्रकार आत्म-विश्वासकी आवश्यकता है, अुसी प्रकार अपनी अपूर्णताका भी भान होना आवश्यक है। परन्तु अिन दोनोकी अुचित मर्यादा होनी चाहिये। मर्यादाको लाघनेवाले आत्म-विश्वासमे अहकारका भय रहता है और अपूर्णताकी गलत कल्पनामे अकर्तृत्व, निराशा और शिथिलता आदिका भय रहता है। दोनो छोरोसे बचकर बीचकी स्थितिमे से

हमे मनुष्यत्वका मार्ग लेना है। यह वस्तु हमे सदा ध्यानमे रखनी चाहिये। वेदान्तीकी तरह न तो हमे अपने-आपको परिपूर्ण मानना चाहिये और न भक्तकी तरह अपने-आपको सदा दीनभावसे पापी ही समझते रहना चाहिये। पुरुषार्थके साथ हममे नम्रता भी हो तो अहकार अुत्पन्न होनेका भय नही रहेगा। और भाविकताके साथ हममे प्रज्ञा और कर्तव्य हो तो हम कभी अपने-आपको दीन अथवा पापी नही समझेगे।

पत्र, फरवरी, १९४१

२३

सच्चा दुःख और अुसका अुपाय

हमारे देशमे तात्त्विक विचारोकी अनेक प्रणालिया है। अिन सब प्रणालियोमे परस्पर विरोध भी हे। अितना ही नही, अेक ही प्रणालीमे परस्पर विरोधी वचन पाये जाते है। जो लोग अैसे ग्रन्थो पर केवल श्रद्धा रखकर चलते है, अुन्हे अिस विरोधका पता नही चलता। विद्वान लोगोके ध्यानमे यह विरोध आता हे, परन्तु वे अपनी तर्कबुद्धिसे अिन वचनोका अर्थ अपनी श्रद्धाके अनुसार करके विरोध मिटानेका प्रयत्न करते है। मुख्य बात यह हे कि हमारे ग्रथोमे परस्पर विरोधी वचन बहुत है।

अैसे परस्पर विरोधी वचन पढकर श्रेयार्थीके मनमे शका अुत्पन्न होती है और अुसका सतोषकारक अुत्तर न मिलनेसे वह घबराता हे, यह स्थिति अधिक समय तक बनी रहे तो वह व्याकुल हो जाता है।

आपकी स्थिति कुछ अैसी ही हो गअी है। आध्यात्मिक ग्रथोमे थोडा अनुभव और थोडी कल्पना, तर्क, अनुमान वगैरा देखनेमे आते है। अिनमे से अनुभवका भाग कितना है और कल्पना, तर्क, अनुमान आदिका भाग कितना हे, यह निर्णय करना श्रेयार्थीके लिअे कठिन हो जाता हे। श्रद्धाके कारण वह प्रत्येक वचनको सत्य मानता हे और विचार करने पर कितनी ही बाते बुद्धिगम्य न होनेके कारण व्याकुल होता है।

आपने आध्यात्मिक ग्रन्थ पढे न होते तो आपके मनमे आजकी व्याकुलता पैदा होती या नही, अिसमे मुझे बडी शका हे। आत्मा-

परमात्माके विषयमे आपने पढा होगा। आत्मज्ञान – आत्मदर्शनके बिना मनुष्यका अुद्धार सभव नही है, अैसी बाते पढकर आपके मनमे अिस प्रकारकी श्रद्धा बैठी होगी। अिस प्रकारका सस्कार आपके मन पर नहीं होता, तो आज आपके लिअे अितना दु खी और व्याकुल होनेका दूसरा कोअी कारण मुझे दिखाअी नही देता।

अब आप अपने मनकी सच्ची स्थितिको समझकर अिस विषय पर विचार करनेका प्रयत्न कीजिये। मनुष्यको चाहिये कि वह अनुभवसे और विवेकसे प्रत्येक वस्तुकी परीक्षा करनेका प्रयत्न करे। तर्क, कल्पना या अनुमानके पीछे मनको नही दौडाना चाहिये। प्रत्येक सिद्धान्तको, प्रत्येक वचनको अनुभवकी कसौटी पर कसकर अुसकी सत्यता-असत्यताकी परीक्षा करनी चाहिये। नि शंक बननेका यही अेक मार्ग है। अिसमे केवल श्रद्धा या मान्यतासे काम नही चल सकता।

आप अपने मनकी जाच करे। आपके मनमे आज जो दु ख है, अुसका प्रत्यक्ष कारण कितना है और मानी हुअी कल्पनाका कारण कितना है? पहले अपने मनके दु खका कारण खोजिये। किस बन्धनसे, किस दु खसे मुक्त होनेका आप प्रयत्न कर रहे है?

मनुष्य दु खसे, बन्धनसे, अज्ञानसे छूटनेकी अिच्छा करता है। अुससे वह अपना अुद्धार चाहता है। यह बात ठीक है। परन्तु सबसे पहले अुसे यह समझ लेना चाहिये कि अुसका सच्चा दु ख कौनसा है। जिस अज्ञानके कारण जीवन-व्यवहारमे हम दु खी होते है, सकटमे पड़ते है, अुसे दूर करनेका प्रयत्न हमे अवश्य करना चाहिये। परन्तु जिस अज्ञानका हमारे प्रतिदिनके जीवन-व्यवहारके साथ कोअी सम्बन्ध ही नही है, अुसे हम अपने दु ख और व्याकुलताका कारण माने तो वह अेक प्रकारका भ्रम है। यह बात अधिक समय तक मनमे रहे तो अधिकाधिक दृढ बनती जाती है और सरल विचार करनेकी हमारी बुद्धिको कुठित कर देती है।

आत्मा-परमात्मामे भेद है या अभेद? यही प्रश्न आपके दु खका कारण है, अैसा आपने मान लिया है। आप समझते है कि अिस प्रश्नका अुत्तर मिलने पर ही आपकी अुन्नति, आपका अुद्धार निर्भर करता है। मैंने पत्रमें अूपर जो दृष्टि बताअी है, अुस दृष्टिसे विचार करने पर आपको पता चलेगा कि मनुष्य-जीवनमे जो अनेक प्रकारके दु ख है, अुनका कारण

आत्मा-परमात्माका अज्ञान नही है। मानव-जातिके दु खो पर अेक नजर डाल कर अुनके विषयमे विचार कीजिये। क्या अुन दु खोका अिस प्रश्नके साथ कोअी सम्बन्ध मालूम होता है? हमारे दु खोका सम्बन्ध हमारे दुर्गुणोके साथ है। हमारे अपने और समाजके दुर्गुण ही हम सबके दु खोका कारण हैं। सृष्टिके धर्मों, शरीरके धर्मो और मन-चित्त-बुद्धिके धर्मोके विषयमे हमारा अज्ञान हमारे दु खोका प्रत्यक्ष कारण है। हममे और समाजमे पाये जानेवाले स्वार्थ, आलस्य, कपट, लालच, विकारवशता, असयम, अनुदारता, अव्यवस्थितता, झूठ आदि दुर्गुण तथा अेकता, प्रेम, करुणा, प्रामाणिकता आदि सद्गुणोका अभाव हम सबके दु खोका मुख्य कारण है। आप प्रत्येक मनुष्यके दु खकी जाच कीजिये, अुस दु खकी कारण-परम्परा खोजिये। आपको यही मालूम पडेगा कि अुसका अपना या दूसरे किसीका अज्ञान अथवा अन्य कोअी दुर्गुण अुसके दु खका कारण है, न कि आत्मा-परमात्माके प्रश्नका अुत्तर। सद्गुणोके अभावके कारण हम स्वय और सारी जनता दु ख भोगती है। अिस दु खसे अपना अुद्धार करना हो तो अपने दु खोके साथ हमे दूसरोके दु खोका भी विचार करना चाहिये। और यह काम केवल विचारसे पूरा नही होगा। विचारके अनुरूप हमारा आचरण भी होना चाहिये। हमारे और समाजके सुख-दु खका तथा कल्याणका विचार करके ही हमे प्रत्येक कार्य करना चाहिये। अिस प्रकार विचार करके जो कार्य किया जायगा, वह स्वभावत न्यायपूर्ण, सर्व-जन-हितकारी और सच्चा ही होगा। अनेक सद्गुणोके बिना अिस प्रकारका कार्य हम नही कर सकेगे। अनेक सद्गुणोका विकास किये बिना हम अैसा आचरण नही कर सकेगे। अिस आचरणका नाम है 'धर्म'। मानव-जीवनमे मुख्य वस्तु यह 'धर्म' ही है। अैसे प्रत्यक्ष धर्मके बिना मनुष्य-जीवन टिक नही सकेगा। जहा यह धर्म नही है, वहा स्वार्थ, दुष्टता, छल-कपट, अत्याचार आदिके सिवा दूसरा कुछ दिखाअी नही देगा।

अब अिस परसे आप सोचिये कि मानव-जीवनमे किस वस्तुकी खास जरूरत है। जिन सद्गुणो और ज्ञान पर मानव-जीवनका आधार है, अुनका विकास ही क्या व्यक्तिके विकास और अुद्धारका मार्ग नही है? जहा व्यक्ति और मानव-जातिका विकास और कल्याण अेक-दूसरेके विरोधी मालूम हो, वहा कोअी न कोअी विचार-दोष अवश्य होना चाहिये। मै अपना ही कल्याण करू और बाकीके लोगोका कोअी विचार ही न करू, यह

मानव-जीवन नही है। मानव-जीवन थोडे समयके लिअे भी अकेला नहीं चल सकता, क्योकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अुसके सारे सम्बन्ध सामाजिक हैं। अुसका अकेलेका अिस ससारमे कुछ भी नही है।

मनुष्यमे जो जो शक्तिया है, अुन सब शक्तियोकी आवश्यक वृद्धि और विशेषत शुद्धि करना हमारा कर्तव्य है। यह वृद्धि और शुद्धि सत्य, प्रामाणिकता, नि स्वार्थता, अुदारता, दया, क्षमा, प्रेम, सयम, पुरुषार्थ आदि सद्‌गुणोसे होती है। अिन सद्‌गुणोंसे ही व्यक्ति और समाजकी शुद्धि हो सकती है। अिन सद्‌गुणोसे ही जगत्‌मे समभाव अुत्पन्न होता है और अुसका विकास होता है। अिस समभावसे हमारी और सारे जगत्‌की अेकता सिद्ध होती है। फिर हमारा और जगत्‌का स्वार्थ भिन्न नही रह जाता। अिस स्थितिको पहुंचनेके लिअे जो आचरण करना होता है, वही 'धर्म' है। अिस धर्मसे ही मानव-जीवन सार्थक होता है। अिसीमे मानव-जीवनकी पूर्णता है।

सम्पूर्ण अर्थ पर ध्यान देकर मेरी लिखी हुअी बातो पर विचार कीजिये। अिस दृष्टिसे मानव-जीवनका विचार कीजिये। आपके पत्रमे जो प्रश्न पूछे गये है, अुनका शास्त्रीय ढगसे अुत्तर देना कठिन नही है। परन्तु वैसे अुत्तरसे आपके कल्याणका प्रश्न हल नही होगा। आप मेरी लिखी हुअी बातोको अच्छी तरह समझनेका प्रयत्न करेगे, तो मुझसे मिलनेकी आवश्यकता नही रह जायगी।

पत्र, ७–१०–'४१

२४

विकास और पुरुषार्थ

मैंने अपने पहले पत्रमें लिखा था कि अनुकूल परिस्थिति और सत्संग प्राप्त होनेसे मनुष्यका विकास होता है। परन्तु यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जिसे विकास—अुन्नति—की अिच्छा होती है, अुसीका विकास—अुन्नति—होती है। जो अुन्नतिके लिअे व्याकुल होता है, वह प्रतिकूल परिस्थितिमें भी अपने मनका संकल्प छोडता नही। परिस्थिति अनुकूल हो या प्रतिकूल, वह किसी न किसी प्रकार कोअी भी प्रयत्न करके अुसमें से अपनी अुन्नतिका मार्ग खोज निकालता है और अुसका आलंबन लेकर अुस पर चलता है। बडे-बडे महापुरुषोंके जीवन-चरित्र पढनेसे यही बात विशेष रूपसे दृष्टिगोचर होती है। अुन्होंने अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकारकी परिस्थितियोंमें से अपने कल्याणका ही मार्ग निकाला है। अिसमें शंका नही कि कैसी भी परिस्थितिमें से अपने कल्याणका मार्ग निकालनेके लिअे प्रचण्ड मनोबल और अगाध बुद्धिमत्ताकी आवश्यकता होती है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें से मार्ग निकालने और अुस मार्ग पर दृढ रहनेके लिअे अधिक विवेक और धैर्यकी जरूरत है। परन्तु महापुरुषोंमें विवेक और धैर्यकी कमी न होनेसे वे कैसी भी परिस्थितिमें अपना कल्याण साधते थे।

राजस और सात्त्विक दोनों प्रकारके मनुष्योंके पास धन होता है। अेक अपने धनका अुपयोग मौज-शौक और भोग-विलासमें करता है, जब कि दूसरा अपने धनसे मनके दया, करुणा, प्रेम आदि सात्त्विक भावोंका विकास करके अपनी अुन्नति साध लेता है। धनसे अेककी विलासिता बढती है, और दूसरेकी सात्त्विकता बढती है। कठिन समयमें अेक अप्रामाणिक और दुराचारी बनकर चरित्र-भ्रष्ट हो जाता है, तो दूसरा दृढतापूर्वक कठिन स्थितिसे पार हो जाता है और चरित्रको बढाकर चरित्र-सम्पन्न बनता है।

अिसमें जरा भी शंका नही कि कल्याणकी अिच्छा हो तो मनुष्य प्रयत्न, विवेक और सत्संगके बल पर राजससे धीरे-धीरे सात्त्विक बन सकता है। प्रत्येक मनुष्यके पास थोडी-बहुत सामग्री तो पहलेसे होती ही है। कोअी भी मनुष्य सामग्री-रहित नही होता। सामग्रीका अर्थ है संस्कार। अपने अुच्च ध्येयके लिअे अिन संस्कारोंका अुपयोग करनेकी

अिच्छा मनुष्यके मनमे होनी चाहिये। अिच्छा होनेमे वह प्रयत्न करेगा। और प्रयत्न करनेसे मार्ग अवश्य ही प्राप्त होगा।

अपने पहले पत्रमे मैंने अुन्नतिकी अिच्छा रखनेवाले सामान्य मनुष्यके विषयमे आपको लिखा था। महापुरुष तो कैसी भी परिस्थितियोमे से अपना मार्ग निकाल ही लेते है। परन्तु सामान्य मनुष्यका जीवन परिस्थितियोके अनुसार बनता है। अुसके मनमे कल्याणकी अिच्छा अवश्य रहती है, परन्तु वह अितनी दृढ और तीव्र नही होती कि किसी भी परिस्थितिमे से वह अपना मार्ग निकाल ही ले। प्रतिकूल परिस्थितियोमे, कुसगमे, वह अिच्छा नष्ट हो जाती है और अुस मनुष्यका जीवन दूसरे ही मार्ग पर चला जाता है। अिसलिअे परिस्थितिया अैसी हो, जिनमे सामान्य मनुष्यके मनमे रही कल्याणकी अिच्छाको समय-समय पर प्रतिकूल वातावरणके सघर्पमे न आना पडे और अुसे सत्सगका लाभ मिल जाय, तो वह अपना विकास कर सकता है। अिसी आशयसे मैंने सक्षेपमे आपको लिखा था। परन्तु यह भी निश्चित समझना चाहिये कि कभी कभी कठिन अवसरका सामना करनेसे सात्त्विकताकी परीक्षा होती है और हमारा आत्म-विश्वास बढता है। परीक्षाके लिअे कठिन अवसर खोजने या जान-बूझकर पैदा करनेकी आवश्यकता नही है; जीवनमे कठिन अवसर तो आते ही रहते है। अैसे अवसर आये तब हमारा विवेक और धैर्य छूटना नही चाहिये।

बेशक, आनन्द और प्रसन्नतामे भेद है। यह मैंने आपको समझाया था और 'जीवनशोधन'* की प्रस्तावनामे लिखा भी है। अुसे ध्यानसे दो-तीन बार पढ़कर अुस पर विचार कीजिये। यह भेद आपके खयालमे अवश्य आयेगा। आनन्द अेक अूर्मि है और प्रसन्नता चित्तकी अेक अतिम अवस्था है। प्रसन्नता बढानेसे बढती नही। कर्तव्य पूरा करनेके बाद वह चित्तमे अपने-आप अुत्पन्न होती है। भोजनके बाद तृप्ति और सपूर्ण कर्मके बाद आरामकी तरह कर्तव्य-पालनके बाद प्रसन्नता आती है। जैसे सबको आनन्दका अनुभव होता है, वैसे ही प्रसन्नताका अनुभव भी सबको होता है।

अब पुरुषार्थ और प्राप्तिके विषयमे। हम पुरुषार्थका क्या अर्थ करते है? प्रयत्नसे प्राप्त होनेवाले अर्थको अर्थात् प्राप्तिको ही हम पुरुषार्थ कहते

---

* नवजीवन प्रकाशन लेखक — कि० घ० मशरूवाला, कीमत ३—०—०, डाकखर्च १—३—०।

है न? अतः पुरुषार्थका अर्थ हुआ प्राप्ति — प्रयत्नसे प्राप्त की हुआी सिद्धि। अिसलिअे पुरुषार्थ और प्राप्तिका अर्थ अेक ही है। परन्तु पुरुषार्थका अर्थ आप केवल प्रयत्न ही करें, तो पुरुषार्थ और प्राप्ति अिन दो शब्दोंके दो भिन्न अर्थ होंगे।

लोगोंमें केवल प्राप्तिकी अर्थात् लाभकी ही अुत्कंठा होती है, अिसलिअे प्रयत्न करनेमें अुन्हें कष्ट मालूम होता है। प्राप्तिमें ही अुन्हें आनन्द अनुभव होता है और प्राप्ति पर ही अुनका ध्यान रहता है। प्रयत्न पर जितना ध्यान देना चाहिये अुतना वे नहीं देते और प्रयत्नमें अुन्हें आनन्द भी नहीं आता। जो मनुष्य प्राप्तिमें ही आनन्द मानता है, अुसे लगता है कि थोड़ा प्रयत्न करनेसे प्राप्ति हो जाय, अथवा बिलकुल ही प्रयत्न किये बिना, प्रयत्नको टालकर या दूसरा कोअी हमारे लिअे प्रयत्न करे और हमें प्राप्ति हो जाय तो अच्छा। अैसे मनुष्य प्रयत्न पर पूरा ध्यान नहीं देते, अिच्छावश होकर केवल प्राप्तिका ही विचार करते हैं और अुसके लिअे अुत्कंठित होते हैं। परन्तु विवेकशील मनुष्य समझता है कि यदि प्राप्ति चाहिये तो अुसके लिअे प्रामाणिकतासे, आलस्य छोड़कर निर्दोष प्रयत्न करना चाहिये। अुसे अिस बातका विश्वास होता है कि सच्चा प्रयत्न करनेसे प्राप्ति अवश्य होगी। हृदयमें अैसा विश्वास होनेसे प्रयत्न और प्राप्ति दोनोंमें अुसे आनन्द अनुभव होता है। प्रयत्नकी अंतिम अवस्था प्राप्ति है। वे अेक-दूसरेसे अलग नहीं हैं। अुसे दोनोंमें कोअी तात्त्विक भेद नहीं मालूम होता। विवेकी और प्रामाणिक मनुष्यका प्रयत्न और प्राप्ति दोनों पर विश्वास होता है। वह प्रयत्नके बिना प्राप्तिकी अिच्छा नहीं करता।

विवेकी मनुष्यको प्रयत्नमें भी आनन्द अनुभव होता है, अिसलिअे अुसके प्रयत्नमें कोअी त्रुटि रहनेकी कम संभावना होती है। केवल प्राप्ति पर ही ध्यान देनेवालेके प्रयत्नमें शिथिलता, आलस्य या अरुचि अुत्पन्न होनेका भय रहता है। अुसके मनमें दूसरोंके परिश्रमसे तैयार हुआी वस्तु लेनेकी अिच्छा पैदा हो सकती है। भोजन करनेमें जितना आनन्द आता है, कपड़े पहननेमें जैसा आनन्द अनुभव होता है, अुतना और वैसा ही आनन्द भोजन बनाने और सूत कातनेमें भी आये तो कितना अच्छा हो? अैसा आनन्द विवेकी और कर्तव्यनिष्ठ मनुष्य ही ले सकता है।

पत्र, १४–८–'३६

२५

विद्या और कला द्वारा मनुष्योचित आनन्द

सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देनेवाली विद्या और कलाकी अभिरुचि होना अेक अीश्वरीय देन है। जिन्हे वचपनसे ही अैसी किसी विद्या या कलाका व्यासंग लगा होता है, अुनका जीवन अुत्साहपूर्ण होता है; अितना ही नही, वे दूसरोके जीवनमे भी अुत्साह पैदा कर सकते है। हमारे लोगोंमे जीवन-निर्वाहके लिअे आवश्यक विद्या या कलाके सिवा अन्य किसी विद्या या कलाकी विशेष रुचि नही पायी जाती, अिसलिअे हमारे जीवनमे स्वाभाविक अुत्साहके वदले अेक प्रकारकी अुदासीनता देखनेमे आती है। साधारण लोगोमे कलाकी जो अभिरुचि पायी जाती है, वह कलाके अुपभोगकी अभिरुचि होती है। अुस अभिरुचिमे और कलाकी अभिरुचिमे वड़ा भेद है।

विद्या और कलाका जीवनमें स्थान

हम नित्यके व्यवसायसे अूव जाते है, अिसलिअे हमारा मन किसी भी स्थूल या सूक्ष्म अुपभोगकी ओर, व्यसनकी ओर या नीदकी तरफ मुड़ता है। अिस वारेमे प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनकी जांच करनी चाहिये और अिस वातका पता लगाना चाहिये कि कोअी धन्धा करके अपने परिवारके लिअे पैसा कमानेके सिवा अन्य किसी सात्त्विक कार्यसे, सात्त्विक विषयसे, या सात्त्विक कलासे हम दूसरोको ज्ञान, आनन्द और अुत्साह दे सकते है या नही? केवल गपशपको छोड़ दे तो हममें अैसी कौनसी विद्या, कला, स्वभावका माधुर्य या सद्‌गुणोंका सञ्चय है, जिसके द्वारा हम प्रतिदिन थोडे समयके लिअे भी दूसरोके साथ रहकर अुन्हे ज्ञान दे सकते है? अुन्हे आनन्दित और अुत्साहित कर सकते है? कौनसी विद्यासे हम दूसरोका दुःख थोड़ा-वहुत भी भुला सकते है? जिन लोगोमे अैसा कोअी भी गुण, विद्या, कला या ज्ञान होता है, अुन्हे जीवनमे कभी अुत्साह और आनन्दकी कमी महसूस नही होती। अतः जीवन और समाजकी दृष्टिसे कला और विद्याकी कितनी आवश्यकता है, अिसका विचार करके प्रत्येक मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक अुसका सम्पादन करना चाहिये। अिससे हमारे जीवनमे नित्य नये अुत्साहका संचार होगा और हमारा जीवन अुपयोगी वनेगा।

शरीरमें बल आनेसे जिस प्रकार मनुष्यको अुत्साह मालूम होने लगता है, अुसी प्रकार अुसकी बुद्धिका बल बढनेसे और मनोभावना जाग्रत होनेसे अुनमें अुत्साह आता है। अिनमे से किसी भी बातसे हममें नित्य नया अुत्साह पैदा होता रहे, तो जीवनमें कभी नीरसता लगनेका कारण नही रहेगा। जो विद्या, कला और ज्ञान हमे और दूसरे लोगोको

विद्या और कलाका व्यापक अुपयोग

सात्त्विकताकी ओर ले जाय तथा हमारा और दूसरोका दुःख दूर करे, अुनके लिअे अभिरुचि रखकर हमें अुसकी प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिये। आरोग्य, बल, स्फूर्ति, चपलता आदिके लिअे शास्त्रीय पद्धतिसे व्यायाम, आसन और प्राणायामका अभ्यास करते रहे और अुस विषयका ज्ञान और कला हस्तगत करे, तो वे हमारे लिअे और अन्य लोगोके लिअे भी बहुत अुपयोगी सिद्ध होगे। प्राणीशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, कृषिशास्त्र, मानसशास्त्र, समाजशास्त्र आदि शास्त्र, भूस्तर, भूगोल, खगोल आदि विद्याये, गायन, वादन, चित्रालेखन, शिल्प, भाषण, लेखन आदि कलाये, हाथसे किये जानेवाले मनुष्योपयोगी कारीगरी और कुशलताके अुद्योग, देश-विदेशका धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक अितिहास, राष्ट्रकी और दुनियाकी वर्तमान परिस्थितिका ज्ञान, विभिन्न प्रकारसे लोकोपयोगी कार्य करनेकी प्रवृत्ति, गावकी, समाजकी, व्यक्तिगत या सार्वजनिक कठिनाअिया, सकट और विपत्तिया दूर करनेके प्रयत्न, सार्वजनिक सस्थाओ, धर्मादा दवाखानो, अस्पतालो आदिमे भावनासे और दयाभावसे काम करनेकी अिच्छा, — अिन सबके द्वारा अपनी शक्ति, बुद्धि और सद्भावनाकी वृद्धि करके अिनका अुपयोग हम अपने परिवार, समाज, देश, राष्ट्र और मानव-जातिके हितार्थ कर सकते है। अत केवल निर्वाहके लिअे आवश्यक विद्याके सिवा किसी अन्य कल्याणप्रद विषयकी, विद्याकी, शास्त्रकी, कलाकी या कार्यकी हमे अभि-रुचि होनी चाहिये। और अुसका अुपयोग यथासभव बहुतोके हितमे करनेकी सदिच्छा हमारे भीतर होनी चाहिये तथा अुसके अनुसार हमें कार्य भी करते रहना चाहिये। अिस प्रकारके जीवनमे मनुष्यको कभी अुकताहट या अनुत्साह नही महसूस होगा, बल्कि वह सदा अुत्साह और आनन्दका अनुभव करेगा।

आज भी अिस प्रकारकी किसी अच्छी अभिरुचिवाले लोगोंका जीवन देखें तो अुसमें हमें सदा आनन्द और स्फूर्ति देखनेको मिलेगी। शहरोंके कृत्रिम जीवनमें समय काटनेके लिअे मनुष्यको कुछ कृत्रिम वस्तुओंका आश्रय लेना पड़ता है; परन्तु वहां और अन्य स्थानों पर भी अलग-अलग ढंगसे सार्वजनिक कार्योंमें अपने ज्ञान और विद्याका सेवाभावसे अुपयोग करनेवाले कुछ सज्जन मिल जाते हैं।

दैनिक जीवनमें अुद्यमशीलताका आनन्द

सार्वजनिक कार्यमें प्रत्येकको सफलता नहीं मिलती। अिसलिअे अैसे कार्यका आग्रह न रखकर मनुष्य अपने परिवार, सगे-सम्बन्धी और पड़ोसियों तक ही दृष्टिको सीमित रखकर अपने जीवनका विचार करे, तो भी अुसे कितनी ही अच्छी बातें सूझेंगी। संसारमें अत्यन्त सीधे-सादे मालूम होनेवाले स्त्री-पुरुष भी अपना जीवन सदा किसी न किसी अच्छे काममें व्यतीत करते पाये जाते हैं। अैसे लोगोंके जीवनको देखें तो समर्थ रामदासके बताये हुअे भाग्यके लक्षण अुनमें ओतप्रोत मालूम होते हैं।

केवल निर्वाहके लिअे किये जानेवाले धंधेसे मनुष्यका सर्वांगीण विकास नहीं होता। अुससे मनुष्यका जीवन आनन्दी, अुत्साही और सुखी नहीं बनता। किसी विरले मनुष्यका धन्धा ही अितना व्यापक, ज्ञानमय और कलामय हो तो बात अलग है, परन्तु बहुजन-समाजकी स्थिति अैसी नहीं होती। निरंतर अेक ही प्रकारका कार्य करने और अेकसी स्थितिमें रहनेसे

आनन्दकी आवश्यकता और अुसका सामर्थ्य

मनुष्य अूब जाय यह स्वाभाविक है। मनुष्यकी अिस अुकताहटको दूर करनेके लिअे और आनन्द प्राप्त करनेके लिअे ही हमारे समाजमें व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक व्रतों, त्यौहारों और अुत्सवोंकी योजना की गअी है। देश, काल और परिस्थितिके अनुसार अिस योजनामें आवश्यक सुधार करते रहना चाहिये। संसारके तापत्रयमें मनुष्यको आनन्दका कोअी आधार, साधन या आशा न हो, तो वह जीनेकी अिच्छा ही न करे। अुसकी अिच्छा तो यही रहती है कि किसी भी प्रकारका शारीरिक, बौद्धिक या मानसिक परिश्रम किये बिना पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा आनन्दका अुपभोग किया जाय। क्योंकि सांसारिक कार्योंसे थका हुआ और त्रस्त मनुष्य आनन्द और सुख चाहता है। अैसी स्थितिमें परिश्रम किये बिना अुसे आनन्द और सुख मिले, थोड़े

समयके लिअे भी अुसका मनोरजन हो, चित्तवृत्ति आनन्दित हो, तो अुतने समयके लिअे भी वह आनन्दमे तल्लीन हो जाता है। अुतने समयके लिअे तो वह अपना दु ख, यातनाअे, गरीबी, अपमान, व्याधि, कर्ज, चिन्ता आदि सबको भूल जाता है और अुतने आनन्द या सुखके आधार अथवा सामर्थ्य पर वह अपनी सदाकी मुसीबतोके साथ झगडनेको या अुन्हे सहनेको तैयार हो जाता है। आनन्दमे किसी तरहका सामर्थ्य न होता, तो अुसके द्वारा मुसीबतोके साथ झगडनेकी शक्ति मनुष्यमे पैदा ही नही होती। ससारका सुख क्षणिक है, अुसका आनन्द अशाश्वत है — अिस प्रकार ससारसे अूबे हुअे अथवा सुख और आनन्दका पर्यवसान अन्तमें दु खमें होता है अैसा समझकर अुसका त्याग करनेवाले लोग भले कुछ भी कहते हो, परन्तु मनुष्य अनादि कालसे आनन्द खोजता और अुसे प्राप्त करता आया हे। ससारमे सुख और आनन्दके प्रसग भले कभी-कभी ही अुसके जीवनमे आते हो, परन्तु अुतनेसे भी अुसकी सारी शक्तिया अुसमे फिरसे भर जाती है। अुसकी सारी शक्तिया दु ख, आपत्ति और सकटके साथ लोहा लेनेको अुत्तेजित होती और समर्थ बनती है। यह आनन्द प्राप्त करनेमें हम विवेकका जितना अुपयोग करेगे, जितनी सावधानी रखेगे, जितनी व्यापक और सामुदायिक दृष्टि रखेगे तथा अुस आनन्दके साथ अनेक सद्भावनाओ और सद्गुणोका विचार जितना जाग्रत रखेगे, अुतना ही हमारा आनन्द अधिक सात्त्विक और अधिक समर्थ बनेगा तथा अुसके कारण हमारी मानवता और आत्म-विश्वास नि सन्देह बढते रहेगे।

निर्दोष विनोदकी कला

निर्दोष और सभ्य विनोदकी कला हमे तथा दूसरोको भी आनन्द देनेवाली अेक अुपयोगी कला हे। निर्दोष विनोद अुसे कहा जायगा, जिससे हम जिसका विनोद करते है अुसे भी हमारे जैसा ही आनन्द होता है, जिसकी वजहसे किसीका भी मन दु खी न होकर सबके हृदयमे निर्दोष आनन्दकी लहरे अुठने लगती है, जिसके आनन्दका पर्यवसान किसी भी प्रकारकी मलिनता, कर्कशता या कटुतामे नहीं होता, जिसमे आनन्दके साथ ही सबकी बुद्धिको थोडा पोषण मिलनेसे बुद्धिमे प्रगल्भता, मार्मिकता और सूक्ष्मता आती है और जो सात्त्विकतामें किसी भी तरह बाधक नही होता। अैसा विनोद बुद्धिको तेजस्वी और मनको अुल्लसित और अुत्साहित कर सकता है और स्वास्थ्यके लिअे सहायक हो सकता है। अुसके कारण आपसका सकोच दूर

होकर प्रेमभाव बढता है, माधुर्य बढता है, मन शुद्ध और पवित्र बनता है, अपने-परायेका भाव कम होता है तथा अेकता और विश्वास बढता है। विनोदकी अैसी कला प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त करनी चाहिये। अिसके सिवा, दूसरे हमसे विनोद करे तो अुनके साथ-साथ हम भी आनन्द अनुभव कर सके, अितनी मिलनसारिता, निरहकारता और अुदारता हममे होनी चाहिये। सभ्य, निर्दोप, ज्ञानयुक्त और मार्मिक विनोदमे जो आनन्द और हास्य प्रकट होता है, अुसमे कितने ही दु:खोको भुलानेकी और अुकताहट पैदा करनेवाली अुदासीनता तथा कभी-कभी चित्त पर अतिशय भाररूप बने हुअे गांभीर्य और चिन्ताकी रुक्षता और असह्यताको घटानेकी शक्ति भरी होती है। अिस परसे यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी कि विनोदमे कुछ विशेष जीवनोपयोगी गुण निहित है। जो लोग अपने पर आअी हुअी या आनेवाली आपत्तियो, दु:खो, सकटो या सहन की हुअी अथवा करनी पडती व्याधियो और यातनाओके वर्णनमे भी सरसता और हास्य निर्माण करनेकी कला हस्तगत कर लेते है, वे जीवनके कितने ही दु:खोको आसानीसे सौम्य बना देते है। अुनकी तितिक्षामे कठोरता नही मालूम होती, परन्तु सहजता और शाति दिखाअी देती है। अुनके अिस सदगुण और कलाका प्रभाव देखकर दूसरे लोगोमे भी आपत्ति, दु:ख, व्याधि आदिको हसते-हसते और सन्तोषके साथ सहन करनेकी वृत्ति जाग्रत होती है। जिनके स्वभावमे अिन गुणोका सवर्धन हुआ रहता है, अुन्हे अेक प्रकारका जीवन-रसायन प्राप्त हुआ है, अैसा कहना अनुचित नही होगा।

साराश यह कि जीवनकी हर स्थितिमे सारे समय मनुष्य दु:खको टालता है और आनन्दकी खोजमे रहता है। आनन्दके लिअे ही वह जीता है। अिसमे अेक अत्यन्त महत्त्वकी बात सदा ध्यानमे रखनी चाहिये कि आनन्दकी प्राप्तिके साथ हमारी मानवता भी बढती रहनी चाहिये। अुसके लिअे हममे साधनोकी शुद्धिका आग्रह होना चाहिये। हमे केवल आनन्दके ही अुपासक नही, बल्कि मानवताके भी अुपासक बनना चाहिये। मानवताके साथ आनन्द होगा ही। परन्तु अिस बातका विश्वास नही रखा जा सकता कि प्रत्येक आनन्दके साथ मानवता होगी ही, और अैसा नियम भी नही है। अत. मनुष्योचित आनन्दको ही हमे जीवनमे महत्त्व देना चाहिये और अुसीकी वृद्धि करते रहना चाहिये।

मानवताकी अुपासनाका आनन्द

२६

गुण-विकासकी दृष्टिसे व्यायामका विचार

व्यायामका विभिन्न दृष्टियोमे विचार करने पर अुसके विषयमें मेरे आजके विचार बने हैं। हुल्लड, अहिंसक सत्याग्रह आदि बातोका जीवनमें प्रासगिक स्थान है। वे कोअी रोजकी बाते नही हैं। फिर भी व्यायाम द्वारा जनतामें जिन गुणोका विकास होता है, अुनका अुपयोग अैसे अवसरो पर भी किस प्रकार किया जाय, अिसका आधार नेताओकी योजना-शक्ति पर रहता है। अिन प्रासगिक बातोकी अपेक्षा मानव-जीवन अधिक व्यापक है। अिस व्यापक जीवनमे मनुष्यको अनेक सद्‌गुणोकी सदा आवश्यकता पडती रहती है। हमारा समाज आज अनेक प्रकारसे अवनत हो गया है। अुसे प्रत्येक अच्छी बात और प्रत्येक सद्‌गुणकी आवश्यकता है। आज समाजमें बल, चपलता, साहस, अुत्साह, निर्भयता, परिश्रमशीलता, सगठित ढगसे काम करनेकी वृत्ति, हिम्मत, समय-सूचकता, स्वार्थत्याग आदि सद्‌गुण देखनेमे नही आते। अिस सम्बन्धमे शहरो और गावो दोनोकी अेकसी स्थिति हे। अत समाजको अैसी शिक्षाकी विशेष आवश्यकता है, जिससे अिन सद्‌गुणोकी वृद्धि हो। यह शिक्षा समाजके सब लोगोको आसानीसे कम खर्चमे, थोडे समयमे और थोडी मेहनतसे मिल सके, अैसी योजनाकी आज जरूरत है। मैं अिस विषय पर जीवनकी व्यापक दृष्टिसे विचार करता हू। शरीर, बुद्धि और मन अिन तीनोके विकासके बिना मानव-जीवन अुन्नत और समृद्ध नही बन सकता। किसी अेक ही वस्तु या गुणको प्रधानता देनेमे मानव-जीवनका विकास होनेके बदले वह कुठित होता हे, अितना ही नहा, अुससे मनुष्यकी स्थिति विकृत होनेकी भी सभावना रहती है।

स्वास्थ्यकी तो प्रत्येक मनुष्यको जरूरत होती ही है। शक्ति भी अुसके लिअे आवश्यक है। परन्तु स्वास्थ्य और शक्तिके साथ स्फूर्ति, चपलता, अुत्साह, साहस, अेकता, सामुदायिक भावना, सेवावृत्ति, अेक-दूसरेके लिअे सद्‌भावसे कष्ट सहनेकी वृत्ति आदि सद्‌गुण प्रत्येक मनुष्यमें होने चाहिये। अिसी प्रकार अन्याय सहन न करना और अुसके लिअे प्रतिकार-शक्ति आदि गुण भी जीवनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये सब सद्‌गुण अुचित शिक्षा,

अभ्यास और सस्कारोके विना समाजमे अुत्पन्न नही होंगे और विकसित भी नही होंगे। अिसमे कोअी शका नही कि अनुत्पादक व्यायाम-पद्धतिकी अपेक्षा अुत्पादक व्यायाम-पद्धति अनेक दृष्टियोसे श्रेष्ठ है। परन्तु अुस पद्धतिके साथ ही जीवनमे प्रतिदिन अुपयोगी सिद्ध होनेवाले गुणोंकी शिक्षा और सस्कार मिलते रहनेकी सुविधा भी समाजमे होनी चाहिये। अैसा होगा तो ही समाजका अज्ञान, दुर्बलता, पगुता, भीरुता, जडता आदि दोष दूर होंगे और अुसमे नित्य अुपयोगी सिद्ध होनेवाले सद्‌गुण आयेंगे। अनेक गुणोंके अेकीकरणसे मनुष्यमे आत्म-विश्वास अुत्पन्न होता है। आत्म-विश्वासके विना जीवन सफल नही हो सकता। हमारी जनतामे अिस सद्‌गुणकी बडी कमी है। हममे निर्बलता और निरुत्साह सर्वत्र देखनेमे आता है। कोअी भी कठिन परन्तु आवश्यक कार्य लगनसे पूरा करनेका या मौका आने पर साहस दिखानेका अुत्साह हमारी जनतामे नही पाया जाता। अिस स्थितिको हम कैसे दूर करेंगे? केवल शारीरिक शक्तिकी वृद्धिको अपना ध्येय न मानकर जीवनके लिअे आवश्यक अनेक सद्‌गुणोकी प्राप्तिको यदि हम अपना ध्येय मानें, तो अिस प्रकारकी शिक्षाकी समाजमे सुविधा होनी चाहिये। अैसी योजना अभी तक हम कर नही सके है। व्यवस्थित परिश्रमसे शारीरिक गुणोका विकास करना चाहिये। विद्यार्थियोको आजीविकाकी शिक्षाके साथ जीवनमे आवश्यक सारे सद्‌गुणोकी शिक्षा मिलनी चाहिये। अिन सब बातोका राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार किया जाना चाहिये। लाठी चलानेकी तालीमसे थोडी लडाकू वृत्ति विद्यार्थियोमे पैदा हो तो अुससे डरनेकी जरूरत नही है। हमारा मुख्य प्रश्न यह है कि हमारी प्रजा शारीरिक और नैतिक दृष्टिसे कैसे अुन्नत हो। यह प्रश्न हमे यथासम्भव जल्दी हल करना चाहिये। हमे अैसे मार्ग और अुपायोकी आवश्यकता है, जिनसे हममे जीवन-शक्ति निर्माण हो। अभी तक अिस बातका महत्त्व हमने समझा होता, और अुसके अनुसार हमने प्रयत्न किये होते, तो आज सर्वत्र दिखाअी देनेवाली भीरुताकी तथा लज्जा अुत्पन्न करनेवाली घटनाअे न घटी होती। सत्याग्रह-सग्रामका स्वरूप भी आजसे भिन्न ही दिखाअी देता। परन्तु हर प्रकारसे निष्प्राण और नि सत्त्व बनी हुअी जनता आज जो कुछ कर रही है, अुससे अधिक वह क्या कर सकती है?

पत्र, ७-६-'४१

२७
आधुनिक व्यायाम-पद्धतिकी अपूर्णता

आज मैं व्यायामके विषयमें अपने विचार आपके समक्ष रखता हू। अिसमें शका नही कि व्यायामकी प्रवृत्ति अेक दृष्टिसे पहलेकी अपेक्षा आज बढी है। पहले अेक जमाना अैसा था जब सर्व-साधारण लोग व्यायामकी ओर कोअी ध्यान नही देते थे, अितना ही नही, अुस समयके सभ्य माने जानेवाले लोग अुसे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। कुछ अश तक अिसका कारण ठीक भी था। अिस समय हम थोडी-बहुत मात्रामें सभी दृष्टियोसे जाग्रत बने है, अिस कारणसे व्यायामके लिअे भी हमारी श्रद्धा कुछ बढने लगी है। फिर भी अन्य विषयोकी तरह व्यायामके बारेमें भी अूपरी दिखावा किया जाता है। आज नये सुधारकी दृष्टिसे देखते हुअे जिस प्रकार प्रत्येक विद्या, कला या ज्ञानका सार्वजनिक अुपयोगिता, हित और अुन्नतिके खयालसे विचार करना आवश्यक है, अुसी प्रकार व्यायामके विषयमें भी अिस खयालसे विचार किया जाना चाहिये। जैसे जैसे बुद्धिमान लोग व्यायामके तत्त्वोको स्वीकार करते जायगे, और अुनमें भी मानव-जातिके कल्याणका विचार करनेवाले व्यक्ति जिस हद तक व्यायाम पर ध्यान देगे, वैसे वैसे और अुस हद तक अुसमें सुधार होगा और वह विषय लोकोपयोगी बनेगा। किसी भी विद्या, कला, ज्ञान, शक्ति और सामर्थ्यको प्राप्त करनेके अुद्देश्य पर और वह अुद्देश्य सिद्ध करनेके साधनो पर व्यक्ति और समाजके हित-अहित और अुन्नति-अवनतिका आधार होता है। अत व्यायामके अुद्देश्य और अुसके साधनोका विचार यदि हम व्यक्ति और समाजके सपूर्ण हित और अुन्नतिकी दृष्टिसे न कर सके, तो व्यायामके आजके प्रचलित प्रकारोमें हमारा हर तरहसे कल्याण होता है अैसा नही कहा जा सकता। धन, विद्वत्ता और सामर्थ्यके पीछे लगनेवाले लोग जगत्‌में प्राचीन कालसे पैदा होते आये है, परन्तु अुनके पैदा होनेसे मानव-जातिके विकासमें सहायता मिली है अैसा नही कहा जा सकता। अुसी प्रकार लोगोमें पहलेकी अपेक्षा व्यायामका थोडा अधिक प्रचार होनेसे लोगोकी अुन्नति ही होती है अैसा विश्वासपूर्वक नही कहा जा सकता। धन, विद्वत्ता और सामर्थ्य प्राप्त करके अपनी सुख-सुविधाके

मानवताको शोभा देनेवाला जीवन-आदर्श

ही पीछे लगे रहनेवाले व्यक्तियोकी तरह व्यायाम द्वारा प्राप्त बलसे अपने सुखके साधन जुटानेकी ही वृत्ति बढती हो, तो अुस वृत्तिको हमे जनहितकी ओर मोडना चाहिये। जो भी कुछ हमारे पास हो और जो कुछ हम प्राप्त करे, अुस सबका अुपयोग सामुदायिक हितकी दृष्टिसे करना ही हमारा धर्म है। केवल व्यायामके विषयमे ही नही, जीवनके हर क्षेत्रमे — विद्या, कला और सामर्थ्यके विषयमे भी हमे अिसी दृष्टिसे विचार करना सीखना चाहिये। धन, विद्या, कला, सामर्थ्य, सत्ता या दूसरी कोअी विशेषता प्राप्त करनेवाला मनुष्य अुसका अुपयोग केवल अपने ही सुखके लिअे करे और जनहितकी कल्पना ही अुसे कभी न आये, तो हम अुसे कृपण, अनुदार और स्वार्थी कहते है। यही न्याय व्यायाम द्वारा बल और स्वास्थ्य प्राप्त करके अुनका अुपयोग लोक-हितार्थ न करनेवाले मनुष्य पर भी लागू करना चाहिये। अिसलिअे व्यायाम द्वारा अपनी और दूसरे लोगोकी भी अुन्नति साधनेका अुदात्त हेतु आपके सामने होना चाहिये। अुसे आपको अपना धर्म समझना चाहिये। दूसरे प्राणियोकी अपेक्षा मनुष्यमे बुद्धिका अधिक विकास हुआ है। अिस बुद्धिके साथ अपनी मनोभावनाओका भी हम विकास करे, अुन्हे विशाल और अुदार बनावे, तो ही मानवताका विकास होगा। आप मानवताको अपने हृदयमे सर्वोच्च स्थान दीजिये। जीवनमे सद्‌गुणोको महत्त्व दीजिये। किसी भी अवसर पर कृपणतासे काम न लेकर अुदारतासे काम लीजिये। आपके जीवनका आदर्श अैसा होना चाहिये जो मानवताको शोभा दे।

बलके साथ ही सदाचारका आग्रह

आप लोग बलके अुपासक है। अिसके साथ ही आपको सद्‌गुणोके भी अुपासक बनना चाहिये। आपको मानसिक शुद्धि और पवित्रताका आग्रह रखना चाहिये। आप केवल बलके अुपासक बने और सद्‌गुणो, सदाचार और पवित्रताके विषयमे आपका आग्रह न हो, तो यह कहना कठिन है कि वह बल आपको किस दिशामे ले जायगा या आपकी क्या दुर्गति करेगा। प्रचण्ड शक्ति और तेज गतिवाले यत्रको नियंत्रणमे रखनेकी योजना भी अुसी यत्रमे होनी चाहिये। तभी अच्छे कार्यमे अुसका अुपयोग किया जा सकता है। अिसी प्रकार अपने बलको भी नियंत्रणमे रखनेकी संयम-शक्ति हमारे भीतर होनी चाहिये। साथ ही अपने बलको सतत सत्कार्यमे लगाये रखनेकी योग्यता भी हममे होनी चाहिये। सयम और सत्कार्य-प्रवृत्ति

अर्थात् शक्ति पर नियन्त्रण रखनेकी और शक्तिको अुचित कार्यमें लगानेकी योग्यता आपमें होनी चाहिये।

जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सयम-शक्ति और प्रेरक-शक्तिकी जरूरत आपको महसूस होगी ही। अपनी शारीरिक या अन्य किसी प्रकारकी शक्तिका अुपयोग करनेके विषयमें कब सयम रखा जाय और कब शक्तिको प्रेरणा दी जाय तथा अिन दोनोंकी मात्रा कब किस कार्यमें कितनी रखी जाय, यह अचूक रूपसे बतानेवाला विवेक भी आपमें सदा जाग्रत रहना चाहिये। शुद्ध विवेक सदा आपको योग्य निर्णय देता रहेगा और आपका अुचित मार्गदर्शन करता रहेगा। अिस सब परसे आपको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि केवल बलकी अुपासनासे हमारा काम नही चलेगा। बलके साथ सयम, सद्‌गुणोकी रुचि, विवेक आदि जीवनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण भी आपमें होने चाहिये। बलसे भी अधिक महत्त्व आपको पवित्रताको देना चाहिये। शारीरिक शक्तिकी अपेक्षा सदाचारका मूल्य आपकी दृष्टिमे अधिक होना चाहिये। सामर्थ्य और सत्ताके साथ सयम न हो, कर्तृत्वके साथ सत्कर्मका आग्रह न हो और किसी भी प्रकारके पुरुषार्थके साथ विवेक न हो, तो ये सारी चीजे मनुष्यको आसुरी स्थितिमें ले जायगी और अन्तमें व्यक्ति और समाज दोनोंका नाश कर देगी। दुनियाका अितिहास देखें अथवा आजकी स्थितिका ध्यान रखकर विचार करे, तो आपको यही मालूम होगा कि व्यक्ति या समाजमें जहा-जहा बल, शक्ति, सत्ता और सामर्थ्य अेकत्र होते है, वहा-वहा बहुधा मद, अहकार, स्वच्छन्दता, अनाचार, दुराचार, अन्याय और अत्याचार ही बढते हैं। और अुनकी वजहसे व्यक्ति और समाज, सबका नाश हो जाता है। पवित्रता और सदाचार, सयम और सत्कर्मका आग्रह, विवेक और लोकहितकी बुद्धि, निरहकारता और सेवा-वृत्ति — ये गुण जहा नही होते, वहा मानवताकी वृद्धि न होकर आसुरीपन ही बढता है। हमें मानवताकी आवश्यकता है और अुसे ही अपने भीतर बढाना है। अपनी सारी शक्तियो, कला और ज्ञानको हमें अुसी दिशामें मोडना चाहिये। दुर्बलता और सबलता — ये दोनो अवस्थायें मनुष्यको अलग अलग ढगसे दुर्गतिकी ओर ले जानेवाली है, फिर भी दुर्बलतामें शक्तिका अभाव होनेसे दुर्गतिकी ओर जानेका वेग मद होता है। परन्तु सबलता मनुष्यको तेजीसे दुर्गतिकी ओर ले जाती है। अिस दुर्गतिसे बचनेका पवित्रता,

सदाचार, सयम, विवेक आदिके सिवा और कोअी अुपाय नही है। अिसलिअे जो बल और शक्तिया हममे है तथा जिन्हे हम प्राप्त कर सकते हैं, अुन सबको सयमसे अपने वशमे रखकर सदा सत्कर्ममे अुनका विवेकपूर्ण अुपयोग करते रहनेका हमारा दृढ निश्चय होना चाहिये। यह दृढ निश्चय हमे सदा जाग्रत रखेगा और जीवनको सफल बनानेमें मदद करता रहेगा।

दैनिक जीवनमें व्यायामका अुपयोग

प्रत्येक विद्या और कला द्वारा मानवता सिद्ध करनेका हमारा अुद्देश्य हो और यदि हम चाहते हो कि हमारी प्रत्येक विशिष्ट विद्या और कलाका सदुपयोग होता रहे, तो अुन्हे प्राप्त करनेके साधनोका भी हमे विचार करना चाहिये। अुपयुक्त विद्या, कला और ज्ञान अुसे ही कहा जायगा, जिसका हमारे जीवनमे सदा अुपयोग होता रहे। ज्ञान कभी न कभी कर्मका रूप ले, तो ही वह सच्चा ज्ञान कहा जायगा। अिस न्यायसे व्यायामकी शिक्षा लेनेमे हम जिन साधनोका अुपयोग करे, वे साधन जीवनमे सदा अुपयोगी सिद्ध होते रहने चाहिये। बौद्धिक शिक्षणमे आज हमारी जैसी स्थिति हो गअी है, वैसी स्थिति यदि व्यायामके विषयमे हम न होने देना चाहते हो, तो अिस विषयमे भी हमे नअी दृष्टिसे विचार करना सीखना चाहिये। आज अिस बातने महत्त्व ग्रहण कर लिया है कि जिन साधनो द्वारा हम बल और चपलता प्राप्त करते है, अुनका जीवनमे सदा अुपयोग होते रहनेकी योजना व्यायाममे होनी चाहिये। अिसके लिअे कदाचित् हमे अपनी परपरागत मनोरचना बदलनी पडेगी। व्यायामके लिअे जो साधन आप काममे ले, अुनका आपके दैनिक जीवनमे अुपयोग होता रहना चाहिये। व्यायामके साधनो और दैनिक जीवन-व्यवहारके बीच कभी कोअी सम्बन्ध ही न आता हो, तो कहना चाहिये कि अुसमे योजना-शक्तिका अभाव है। अिन साधनो द्वारा प्राप्त बल, चपलता और कुशलताका भी जीवनमे व्यापक और सर्वजन-हितकी दृष्टिसे अुपयोग होता रहना चाहिये। अिसी दृष्टिसे व्यायामके साधनो प्रकारो और अुनसे प्राप्त होनेवाले गुणोका विचार किया जाना चाहिये। सालमे अेक-दो सार्वजनिक समारभ करके हम अपने बल, चपलता, होशियारी या शस्त्र-सचालन-विद्याका प्रदर्शन करे और अुसके द्वारा लोक-रजन करके थोडी-बहुत प्रशसा प्राप्त करे तथा अुतनेसे ही यह समझ ले कि हमारा वार्षिक कर्तव्य पूरा हो गया, तो लाचारीके साथ कहना पडेगा

कि हम अपने जीवनका, अपनी अपार शक्तिका और अुसकी अुपयोगिताका महत्त्व अभी तक समझे नही है।

ज्ञान, विद्या, कला, धन, बल और सामर्थ्य ये सब दैनिक जीवनमे अुचित कर्मका रूप लें, तो ही मानना चाहिये कि ये सार्थक है। अिसके बिना अुनकी कीमत कैसे आकी जाय? प्रतिदिनके जीवनमें यदि अुनका अुपयोग न हो सके, तो अुन्हे प्राप्त ही क्यो किया जाय? कभी अुपयोगमें न आनेवाली वस्तुओ तथा कभी अुपयोगमे न आनेवाली हमारी अिन तलवारो, भालो, पटो और अुन्हे चलानेकी कलाके बीच निरुपयोगिताकी दृष्टिसे भला क्या फर्क है? ये वस्तुअे सच्ची हो या चित्रकी बनावटी हो — दोनो अेकसी ही है। अुसी तरह जिन शस्त्रोका जीवनमे कभी अुपयोग नही करना है, वे सच्चे हो तो क्या और लकडीके हो तो क्या? गहराअीसे विचार करने पर कहना पडता है कि जीवनमे जिन वस्तुओ, कलाओ या विद्याओका हमे कभी भी अुपयोग नही करना है, अुनके विषयमे सदा यह समझते रहना कि वे हमारे लिअे बहुत अुपयोगी है, जीवनकी* अनेक भ्रान्तियोमें से अेक भ्रान्ति है।

परन्तु मेरे अिस कथनका आप यह अर्थ न करे कि मैं जीवनमे अिन शस्त्रो और लकडीके शस्त्रोकी अेक ही कीमत करता हू। मैं अितना ही कहना चाहता हू कि किसी भी वस्तु, विद्या और बलका सदा सत्कर्ममे अुपयोग होता रहे, तो ही वे सफल होते है और अुनके द्वारा हमारा जीवन सफल होता है। अन्य किसी प्रकारसे अिनका सफल होना सभव नही। अिस न्यायसे मैंने पहले कहा है कि जिस प्रकार हर चीजका हमें अुपयोगिताकी दृष्टिसे विचार करना चाहिये, अुसी प्रकार व्यायामके क्षेत्रमे भी हमे अिस नअी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। व्यायामका शस्त्रो या शस्त्र-सचालन-विद्याके साथ अनिवार्य सबध नही है। लडना जिन लोगोका जीवन-व्यवसाय था अथवा लडकर जिन्हे अपने जीवनकी रक्षा करनी पडती थी, अुनके लिअे यह जरूरी था कि वे प्रत्येक शस्त्र भलीभाति चलाना जाने। अिसके लिअे अुन्हे आवश्यक तालीम लेनी पडती थी। अुस विद्याके अभ्यासके कारण अुपयोगमे आनेवाले अुनके अवयव और स्नायु बलवान बनते थे। अुनमे चपलता आती थी, साहस आता था, और स्वभावत होनेवाले व्यायामसे वे नीरोग रहते थे। जिस तरह किसान अपना काम करते करते अुसमे निष्णात हो जाता

है, अुसके स्नायु मजबूत बन जाते है तथा अुसके द्वारा होनेवाले व्यायामसे वह नीरोग रहता है, अुसी तरह लडनेवाले लोगोका भी समझना चाहिये। अपने जीवन-व्यवसायके शिक्षणमे ही स्वभावत अुनका व्यायाम हो जाता था। व्यायामके लिअे वे शस्त्र नही चलाते थे। हम व्यायामके खातिर गदा जैसे मुगदर घुमाते है और शस्त्रोके दाव सीखते है। वास्तवमे वह शिक्षण लेकर वैसा जीवन बितानेका हमारा अुद्देश्य नही होता, केवल व्यायामका ही अुद्देश्य होता है। परन्तु परम्परासे हम यही करते आये है। अिसीलिअे मै कहता हू कि व्यायामके लिअे हमे नअी दृष्टि प्राप्त करनी चाहिये।

वास्तवमे यह विद्या सीखकर यदि लडवैया बननेका हमारा अुद्देश्य होता, तो अैसे प्रदर्शन और दिखावेसे हमे कभी सतोप न हुआ होता।

शिक्षाका अुद्देश्य : अुत्तम नागरिक बनाना।

प्रत्येक व्यायामशालामे कोअी न कोअी वार्पिक कार्यक्रम रहता ही है। अुससे आज तक कितने लडवैये तैयार हुअे है? अथवा कितने लोगोने लडाअीका जीवन अपनाया है? यह मै केवल तर्क या कल्पनासे नही कह रहा हू। मैने जीवनकी महान आकांक्षाओ, अुत्साह और कर्तृत्वका काल अिस विद्याका प्रचार करनेमे और यह विद्या जाननेवालोके साथ बिताया है। अिसी विद्यासे हमे देशका अुद्धार करनेका सामर्थ्य प्राप्त होगा और लडनेवाले लोग मिल सकेगे, अैसी आशासे जीवनका महत्त्वपूर्ण काल बितानेके बाद अुसमे प्राप्त अनुभवोके प्रकाशमे ५० वर्ष तक विचार करके ही मै यह कह रहा हूं। हमें कैसे समाजकी रचना करना है, अिसका अच्छी तरह विचार करके अुसके अनुरूप व्यायामकी पद्धति और प्रकार निर्माण करने होगे। साध्यको दृष्टिमें रखकर साधनोकी योजना करनी होगी। परम्पराको महत्त्व न देकर अुपयोगिताका ध्यान रखना होगा तथा व्यक्ति और समाजको अधिक योग्य और सद्गुण-सपन्न बनाना होगा। जीवनमे जिन गुणो और कर्तृत्वकी आवश्यकता है, वे व्यायाम द्वारा समाजमे पैदा हो सके अैसी योजना हमारे व्यायाम-शिक्षणमे होनी चाहिये। शिक्षा प्राप्त करके मनुष्यको अुत्तम नागरिक बनना चाहिये। अुत्तम नागरिकमे अनेक सद्गुणोका होना अत्यन्त आवश्यक है। ये सद्गुण केवल व्यायाम या व्याख्यानसे नही आ सकते; वे सद्गुणी व्यक्तिके सहवासमे रहनेसे और अैसे वातावरणमे रहनेसे प्राप्त

होते हैं, जिनसे सदाचारके संस्कार हम पर पड़ें, अुनका विकास हो और वे दृढ़ बनें। मनुष्य यदि अैसी जीवन-पद्धतिमें से गुजरे, जिसमें सद्गुण धारण करना आवश्यक हो जाय, तो अुसकी शिक्षा, जीवन और गुणोंमें कोअी भेद नहीं होता। शिक्षा और जीवन अलग अलग हों, तो शिक्षा केवल बौद्धिक विषय बन जाती है और अुसमें कोअी शारीरिक अंग हो तो अुसका समय शिक्षा ग्रहण करनेकी अवधि तक ही सीमित माना जाता है। अतः शिक्षाकी पद्धति ही अैसी होनी चाहिये कि अुसके द्वारा स्वभावतः हमारी मानवता बढ़ती रहे। अिसके लिअे शिक्षाका ध्येय निरन्तर हमारे सामने रहना चाहिये और अुसके साधनोंका प्रतिदिनके जीवनमें अुपयोग होता रहना चाहिये। अिस दृष्टिसे व्यायामके बारेमें विचार और सुधार होना आवश्यक है।

तरुणोंके लिअे शुभाकांक्षा

अिसी बात पर जोर देकर मैं आपसे आग्रहपूर्वक कहना चाहता हूं कि जो बल आप प्राप्त करें, अुसका जीवनमें प्रतिदिन अुपयोग करनेका प्रयत्न कीजिये। अुससे आप समझ सकेंगे कि अुपयोगिताकी दृष्टिसे हमारे बल, शक्ति और विद्याकी जीवनमें कितनी कीमत है। अुनका प्रत्यक्ष अुपयोग होता हो तो अुनका प्रसार कैसे किया जाय और न होता हो तो अुनमें अुपयोगिताका गुण कैसे पैदा किया जाय, अिस पर आपको विचार करना चाहिये। यह बात वैसे प्रयत्नके बाद ही आपको सूझ सकेगी। यह तभी हो सकता है जब बलप्राप्ति और विद्याप्राप्तिका आपका अुद्देश्य शुद्ध, अुदात्त, व्यापक और जनहित-लक्षी हो और अुस अुद्देश्यके अनुसार अपनी प्रत्येक विशिष्ट शक्ति, बुद्धि, गुण और विद्याका अुपयोग निरन्तर दूसरोंके कल्याणके लिअे करनेका आप प्रयत्न करें। मानव-जीवन हमें अिसीलिअे मिला है। अपनी संपूर्ण शक्तियोंको यथाशक्ति विकसित और शुद्ध करके, अपना सर्वांगीण विकास और शुद्धि करके, सत्कर्मोंके द्वारा सबके साथ समरस हो जानेमें ही सच्ची मानवता है। आप गहरा विचार करेंगे और आपमें कुछ योजना-शक्ति होगी, तो आपको सूझेगा कि अपने बल और शक्तिका तथा चपलता और स्फूर्तिका दीन-दुखियोंकी सेवामें कैसे अुपयोग किया जाय। आप दलितों और पीडितोंको विपत्तिसे अुबार सकेंगे और अन्याय तथा अत्याचारका विरोध करनेकी

वृत्ति आपमे जाग्रत होगी। सन्मार्ग पर चलना आपके लिअे सरल और आसान हो जायगा। आपका जीवन आपको धन्यताका अनुभव करायेगा और दूसरोका मार्गदर्शक बनेगा।

भगवान करे आपका बल और अुत्साह सदा वढता रहे। और सबसे बढकर तो मेरे अन्त करणकी यह कामना है कि सदाचारके विपयमे आपका आग्रह सदा बना रहे। तरुणोके सामने वोलनेमे मुझे सदा आनन्द होता है। क्योकि मेरी यह आशा है कि देश और समाजके कल्याणका लक्ष्य वे ही पूर्ण करेगे। भविष्य आप लोगोके हाथमे है। असलिअे आपके हृदयमे शुभ अुद्देश्य और शुभ आकाक्षा अेकरस हो जाय और आपकी योग्यता आजसे अनेक गुनी बढ जाय, तो मेरा विश्वास है कि यह आशा अवश्य पूरी होगी। मेरा विश्वास है कि हम लोगोकी अपात्रता, हमारे अज्ञान और हमारी प्रतिकूल परिस्थितियोके कारण देशके विषयमे हमारे जो सकल्प पूरे न हो सके अुन्हे आप लोग पूरा करेगे। भगवान् आपको अधिकसे अधिक वल, ज्ञान और सद्भावना प्रदान करे, और अुन सबका सदैव सदुपयोग हो। *

२८

व्यायामके विषयमें जीवनोपयोगी दृष्टि

पश्चिमके लोगोकी व्यायाम-पद्धतिके आधार पर हमारी व्यायाम-सबधी दृष्टि कुछ भिन्न होने लगी है और अुसके अनुसार हमारे देशमे नअी व्यायाम-पद्धतिया निर्माण होने लगी है। कुछ बातोमे तो हम अनेक वर्षोसे पश्चिमके लोगोका अनुकरण करते ही है। हमारी पुरानी व्यायाम-पद्धतियोका जन्म शौकीन राजा-महाराजाओ द्वारा अपने आश्रयमे रखे हुअे पहलवानो द्वारा, साटमारी जैसे अवसरो पर होनेवाले खेलोके अुस्तादो द्वारा या अिसी प्रकारके खेल-तमाशोका अुत्साह रखनेवाले लोगो द्वारा हमारे समाजमे हुआ था। अुसी प्रकार आजकी कुछ पद्धतिया भी पाश्चात्योके सम्पर्कके कारण हमारे समाजमे दाखिल हुअी है और आज भी हो रही है। राजा-महाराजाओ, पहलवानो, अुस्तादो या पाश्चात्य व्यायाम-विशारदोका और हमारा जीवन तथा जीवन-ध्येय अेक न होते हुअे भी हम अुनका अनुकरण करते आये

* अनेक भाषणोसे।

हैं। परन्तु विचार करनेसे पता चलता है कि अिस तरह हमारा काम नहीं चलेगा। समाजके स्त्री-पुरुषोंके लिअे आज कौनसे शारीरिक गुण आवश्यक है और वे गुण सुलभसे सुलभ कौनसे साधनों द्वारा कम खर्चमें आसानीसे प्राप्त किये जा सकते हैं, अिसका हमें विचार करना चाहिये और यह दृष्टि भी हमें रखनी चाहिये कि अुन गुणोंकी प्राप्तिमें अुपयोग किये जानेवाले साधन प्रत्यक्ष जीवनके व्यवहारोंमें भी अुपयोग किये जाय।

व्यायाम और परिश्रमके समन्वयसे होनेवाले लाभ

अिस दृष्टिसे हमें कोअी अैसी पद्धति खोज निकालनी चाहिये, जिससे केवल शरीर-बल प्राप्त करनेके लिअे हमें अलग व्यायामकी जरूरत न रह जाय। जीवनोपयोगी कार्य करते करते ही हमें सदा बल और आरोग्यकी प्राप्ति होनी चाहिये। और अुसके द्वारा प्राप्त होनेवाले बल और आरोग्यका अुपयोग हमें जीवनोपयोगी कार्योंमें करते आना चाहिये। अिस प्रकार हमारा व्यायाम, अुसके साधन, शिक्षा और जीवन सदा परस्परावलबी रहने चाहिये, अुनका आजका अलगाव दूर होना चाहिये। अिसके लिअे हमारा जीवन परिश्रमपूर्ण बनना चाहिये। अैसा कोअी व्यवसाय हमें न मिले तो परिश्रम करके जीवन-निर्वाह करनेवाले लोगोंमें मिलकर घटे दो घटे हमें परिश्रमका काम मेहनताना लेकर या लिये बिना करना चाहिये। अिससे हम रोज अुपयोगी परिश्रम कर सकेंगे। और अुन लोगोंके साथ मिलते रहनेसे हम अुनके सुख-दुःख जान सकेंगे, अुनकी स्थिति समझ सकेंगे और परिश्रमका सच्चा मूल्य पहचानेंगे। अिससे अुन लोगोंके लिअे हमारे मनमें सहानुभूति और मित्रभाव पैदा होगा, श्रेष्ठताका हमारा अहकार कम होगा और अुन लोगोंको कुछ सुसंस्कार भी मिलेंगे। अिस प्रकार अेक काम करते हुअे हमें और अुन्हें अनेक शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और सामाजिक लाभ होंगे। परन्तु परिश्रमी लोगोंमें मिलकर अुनके साथ हम कभी परिश्रम न करें, तो वर्षों तक रोज व्यायाम करके पसीना बहाने पर भी हम अुन लोगोंके परिश्रमकी सच्ची कीमत नहीं समझ सकेंगे। हमारे मनमें अुनके प्रति कभी सहानुभूति या मित्रता अुत्पन्न नहीं होगी। परिश्रम करनेवाले लोग वास्तवमें अुपयोगी परिश्रम करते हैं, फिर भी व्यायामके निमित्तसे निरुपयोगी परिश्रम करनेवाले हम लोग अुन्हें हलके मानते हैं और अपने-आपको श्रेष्ठ समझते हैं। जिस व्यायाम-पद्धतिके फलस्वरूप भेद और

अहंकारकी झूठी मान्यताये नष्ट होनेके बजाय कायम रहती है, अुसे शारीरिक और मानसिक लाभकी दृष्टिसे श्रेष्ठ कैसे माना जाय, यह शका और प्रश्न मनमे अुठता है।

परिश्रमकी शर्म और व्यर्थ नष्ट होनेवाली क्रियाशक्ति

पश्चिमी या भारतीय व्यायाम-पद्धति द्वारा हम जो बल प्राप्त करते है, अुसका प्रतिदिनके जीवनोपयोगी शारीरिक कार्योंमे हम कितना अुपयोग करते है, अिसका कभी कोअी हिसाब लगाता है? अिन पद्धतियोके व्यायाममे हम जो शक्ति खर्च करते है, अुस शक्तिसे यदि हम जीवनोपयोगी कार्य करते रहे तो किफायतशारीकी और दूसरी दृष्टियोसे वह कितनी लाभदायी होगी, अिसका भी हमने कभी अन्दाज लगाया है? व्यायाम करते समय खर्च होनेवाली क्रियाशक्ति और अुसके बाद प्राप्त होनेवाला बल — अिनका अुपयोग यदि जीवनोपयोगी कार्योंमे न हो तो जीवनकी दृष्टिसे यह पद्धति अुपयोगी कैसे मानी जा सकती है? जनसमुदायके सामने बल और शक्तिके बडे-बडे प्रयोग दिखानेवालोके जीवनमे जब अुसी शक्तिका अन्य किसी कार्यमे अुपयोग करनेके मौके आते है — अुदाहरणके लिअे अपना सामान खुद अुठानेके मौके आते है — तब अैसा करना अुन्हे अच्छा नही लगता। अिसमे अुन्हे लज्जा मालूम होती है। अिसका अर्थ यह हुआ कि शक्ति बढाये तो हम और शक्तिके अुपयोगी काम करे दूसरे लोग! तब फिर जिस शक्तिका जीवनके कार्योंमे अुपयोग नही हो सकता, अुसे प्राप्त करनेकी विद्याके लिअे और अुसके साधनोके लिअे हम अभिमान कैसे कर सकते है? अेक दस हॉर्स पावरके अेजिनको हम पूरी शक्तिसे रोज चालू रखे, परन्तु अुस शक्तिके द्वारा कोअी प्रत्यक्ष कार्य न करावे और यह सतोष मानते रहे कि अुसे चलानेसे मशीनके बिगड़नेका डर नही रहेगा — अिससे अुसकी गति कायम रहेगी, शायद बढे भी, तो क्या यह ठीक होगा? यही न्याय यदि हम अपनी प्रचलित व्यायाम-पद्धति पर लागू करे तो? जीवनोपयोगी परिश्रमके और शक्तिके काम गरीब लोग करे, यह मान्यता और संस्कार हममे अितने गहरे अुतर गये है कि ये काम करनेमे हमे हीनताका अनुभव होता है। अिसलिअे हममे शक्ति होते हुअे भी हम अुन कामोको टालते रहते है। सच पूछा जाय तो व्यायाम और अुपयोगी परिश्रम दोनोंमें मनुष्यको शरीर-श्रम करना पड़ता है। व्यायाममे अुसे

अुत्साहका अनुभव होता है। अपनी बराबरीके और अपने दर्जेके लोगोंके साथ व्यायाम करनेमें अुसे अुत्साह और आनन्द मालूम होता है। परन्तु परिश्रम करनेमें अुसे हीनता लगती है। वह सोचता नहीं कि अपने शरीरमें शक्ति होते हुअे भी शक्तिके काम दूसरों पर क्यों डाले जाय और अुन्हें खुद करनेमें हीनताका भाव मनमें क्यों पैदा हो? हम लिखना-पढना जानते हों तो अपने पत्र पैसे देकर हम दूसरोंसे नहीं पढवाते। तो फिर हमारे अपने काम करनेमें हमें शर्म क्यों लगनी चाहिये? जिस प्रकार हमारे आजके बौद्धिक शिक्षण और जीवनके बीच कोअी मेल नहीं होता, अुसी प्रकार हमारे शक्ति-सम्पादन और जीवनके शक्तिसे सम्पन्न होनेवाले कार्योंके बीच कोअी मेल नहीं मालूम होता।

जीवनकी अुन्नतिकी दृष्टिसे यह स्थिति अच्छी नहीं है, अैसा यदि हमें लगता हो तो हमें अपने संस्कार और मान्यतायें बदलनी होंगी। प्रचलित व्यायाम-पद्धतिके कारण बरबाद हो रहे परिश्रमकी कीमत हमारे ध्यानमें आनी चाहिये। हमें अपने आचरण द्वारा बच्चोंके मन पर बचपनसे ही यह संस्कार डालना चाहिये कि किसी भी प्रकारका जीवनोपयोगी परिश्रम करनेमें हलकापन नहीं है। अनैतिक काम करके, समाज-द्रोह, धोखेबाजी, दुष्टता, अप्रामाणिक व्यवहार करके और दूसरोंका शोषण करके पैसा कमानेमें मनुष्यको हीनता नहीं मालूम होती। परन्तु अपना या दूसरोंका जीवनोपयोगी परिश्रमका काम करनेमें अुसे शर्म आती है। अिससे स्पष्ट पता चलता है कि मनुष्य किस बातमें डरता है। सच पूछा जाय तो हमें अधर्मका डर लगना चाहिये और धर्मका आचरण करनेकी हममें हिम्मत होनी चाहिये। यह हिम्मत हममें आ जाय तो गलत संस्कारोंके कारण व्यर्थ जानेवाली हमारी शक्तिका जीवनोपयोगी कार्योंमें अुपयोग होगा और हमारा जीवन आजकी तुलनामें अधिक अुपयोगी और अुन्नत बनेगा।

योजना-शक्तिके लाभ

बारहों महीने बहनेवाली बडी-बडी नदियोंको लोग सृष्टिके भव्य दृश्य मानकर आनन्दित होते हैं। श्रद्धालु लोगोंको अितनेसे संतोष नहीं हुआ, अिसलिअे अुन्होंने अिन नदियोंको अीश्वरीय विभूति मानकर अुनके दर्शनमें, अुनमें स्नान करनेसे तथा अुनकी प्रदक्षिणा करनेमें पुण्य मिलनेकी कल्पना की, अिस भावनाका पोषण किया, और अिस भावनाके अनुसार आचरण करके वे पुण्यकी

प्राप्तिका सतोष मानते रहे। परन्तु विचारशील, बुद्धिशाली और जनहितकी लगनवाले कल्पनाशील, योजना-कुशल और पुरुपार्थी व्यक्तियोको अिनमे से किसीमे भी आनन्द या पुण्य नही लगा। अुनके खयालमे यह बात आअी कि कुदरतकी अितनी विशाल जल-सम्पत्ति निरन्तर व्यर्थ बहती रहती है, अिसलिअे अुन्होने अिन नदियोमे से नहरे निकालकर हजारो-लाखो अेकड जमीनको अुपजाअू बनाकर लोगोको सुखी करनेका यश प्राप्त किया। अूचे पर्वत परसे अखड धारामे बहते हुअे पानीके प्रपातको देखकर मूर्ख भी आनन्दित होता है। अिसके लिअे अधिक वुद्धिकी आवश्यकता नही है। कोअी कवि अुस पर काव्य रचकर आनन्दको बढा सकता है। आज तक अिस विषयमे अैसा होता ही था। परन्तु किसी वुद्धिशालीके ध्यानमे यह बात आअी कि कुदरतकी अितनी बडी अगाध शक्ति हजारो वर्पसे व्यर्थ नष्ट हो रही है, और अुसने अपने योजना-कौशल द्वारा अुसमे से अपार शक्ति निर्माण करके अनेक कार्योमे व्यवस्थित ढगसे अुसका अुपयोग करनेकी सिद्धि प्राप्त की। अिस परसे हमारे देशमे और दुनियाके देशोमे सृप्टिकी कुदरती शक्तियोका जीवनोपयोगी कार्योमे अुपयोग करनेका प्रयत्न शुरू हुआ। अिस प्रकार बुद्धिमान मनुष्योने कुदरतकी व्यर्थ जानेवाली शक्ति और सपत्तिके सदुपयोगका प्रयत्न करके अुसमे अकल्पित सफलता प्राप्त की। हवाकी शक्ति, भापकी शक्ति, बिजलीकी शक्ति — अिन सबका अुपयोग करके मनुष्य कैसे बडे बडे कार्य सिद्ध करता है? यदि सृष्टिकी कुदरती शक्तियोके अुपयोगमे मनुष्यको अितनी सफलता मिली है, तो कोअी बुद्धिशाली व्यक्ति मनुष्यकी सुप्त शक्तियोको जाग्रत करके अुन्हे और व्यायाम या दूसरे किसी कारणसे व्यर्थ नष्ट होनेवाली क्रियाशक्तिको जीवनोपयोगी कार्योमे लगानेका प्रयत्न करे, वैसी योजनाये बनावे, तो निश्चित ही यह काम अुसे अुपर्युक्त कार्यो जितना कठिन नही मालूम होगा।

यह विचारसरणी यदि हमारे गले न अुतरती हो, तो अिसके कारण हमे ढूढ निकालने चाहिये। केवल रूढि, प्रदर्शन या आडम्बरको महत्त्व न देकर सारे समाजके जीवन और जीवन-व्यापारको ध्यानमे रखते हुअे जीवनकी सर्वांगीण सफलताकी दृष्टिसे हमे व्यायामका विचार करना चाहिये। वर्तमान व्यायाम-पद्धतिके कारण धन, समय और मानव-शक्तिका कितना अुचित या अनुचित खर्च होता है, अिसका भी हमे विचार करना चाहिये। हमे देखना

चाहिये कि अिस पद्धतिसे हमारे वीचके अूच-नीच, अमीर-गरीव, विद्वान-अविद्वान, वुद्धिजीवी-श्रमजीवी आदिके भेदभाव नष्ट होकर हम सवमे प्रेम, मेलजोल, विश्वास, अेकता आदि भाव अुत्पन्न होते है या नही। केवल व्यायामका ही नही, परन्तु जीवनकी प्रत्येक छोटी-वडी वात या पद्धतिका हम पर और समाज पर सव दृष्टियोसे कल्याणकारक परिणाम हो, अैसी प्रत्येक विपयमें हमारी दृष्टि होनी चाहिये। प्रत्येक विद्या और कला अैसी होनी चाहिये, जो हमारी मानवताके विकासमे सहायक हो। हमारी शिक्षाके प्रत्येक विपयका हेतु अैसा होना चाहिये, जिससे हमारी स्वार्थवृत्ति, दुर्वलता, अज्ञान, विकारवशता और अहकारका नाश हो तथा सद्‌वृत्तिया जाग्रत होकर अुचित कर्माचरण द्वारा विकास करती रहे। हमारा शरीरिक, वौद्धिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक या धार्मिक विकास अेकागी न होकर अैसे ढगसे होना चाहिये कि वह अेक-दूसरेका पोषण करे और अुन्हे वढाये। अिस विकासके लिअे अनुकूल अुपयुक्त कल्पनाये, भावनाये, शिक्षा और योजनाये हमें सूझनी चाहिये। अुसके कारण हमारे भीतरकी अपने-परायेकी भावना, व्यक्तिगत लोभ, कीर्ति तथा प्रतिष्ठाकी लालसा जैसी तुच्छ और हीन वृत्तिया नष्ट होनी चाहिये। हमे मानवताका श्रेष्ठ ध्येय अपने सामने रखकर जीवनके सव अगोका विचार करना चाहिये।

योजना-शक्तिकी आवश्यकता

मानव-जातिको जव कभी शुद्ध और निर्दोष जीवन-क्रमकी जरूरत महसूस होगी, तव व्यायामके सवधमे अिस लेखमे वताये हुअे विचारोके अनुसार व्यायाम, वल-वर्धन, स्वास्थ्य और मनोरजन — अिन सवका जीवनोपयोगी परिश्रमके साथ मेल वैठा कर ही अुसे अपना वौद्धिक और मानसिक विकास साधना होगा। हमारे पूर्वजोने व्यायामके लिअे सूर्य-नमस्कारकी योजना करके अुसके द्वारा शारीरिक और मानसिक विकासका मेल साधा है, अथवा 'खो-खो' और 'हुतूतूतू' जैसे खेलोकी योजना द्वारा विना किसी खर्चके शारीरिक, वौद्धिक और मानसिक विकास साधनेका प्रयत्न किया है। अिसी तरह स्त्रिया भी तरह तरहके घरेलू खेलोसे व्यायाम, परस्पर प्रेम, मनोरजन आदिका लाभ आसानीसे प्राप्त कर सकती है अैसा आज भी दिखाअी देता है। अिस सारे अनुभव परसे किसी वुद्धिशाली और कल्पकको अैसी कोअी योजना सूझ सकती है, जिससे अूपर वताअी हुअी

सारी बातोका समन्वय साधकर सबके शुभ परिणाम अेकसाथ प्राप्त किये जा सके। परन्तु अैसा सौभाग्यका दिन आये तब तक व्यायामके विषयमे केवल शारीरिक स्वास्थ्य, बल, मनोरजन या आडबर पर भार न देकर हमे जीवनोपयोगी शारीरिक गुणो तथा बौद्धिक विकास और सदाचारका आग्रह रखना चाहिये। हमे खुले मैदानकी सामुदायिक व्यायाम-पद्धति खोज निकालनी चाहिये, जिसकी सहायतासे मनोरजनके साथ बुद्धिका भी विकास हो। हमे अिस विषयमे अितना सुधार तो शीघ्र कर ही लेना चाहिये, जिससे 'आरोग्य, अनुशासन, व्यवस्थितता, सेवावृत्ति, प्रेम, मैत्री, विश्वास, अेकता आदि गुण हमारे भीतर पैदा हो, मानवताकी प्राप्तिके साथ मानवोचित आनन्द भी हमे मिलता रहे, अमीरसे गरीब तक सब लोग बिना किसी खर्चके या कम खर्चमे अुस पद्धतिका लाभ अुठा सके तथा हमारे बीचका भेदभाव कम हो और आजकी अपेक्षा हम अधिक अुन्नत बनें।

२९

शिविर-शिक्षणका रहस्य

तरुण मित्रो,

आप यहा पूरे अेक महीने रहकर आज अपने-अपने घर लौट रहे है। अिस अेक माहके सहवासमे आपको तरह-तरहके अैसे अच्छे-बुरे अनुभव हुअे होगे जो पहले कभी न हुअे थे। बहुत सभव है अिसके पूर्व अितने बडे समुदायमे अेक परिवारकी तरह खाने-पीने, खेलने, काम करने आदिके मौके आपके जीवनमे नही आये होगे। अिस दृष्टिसे आपका यह अेक माहका सहवास आपमे से प्रत्येकके जीवनकी अेक महत्त्वपूर्ण घटना कही जायगी। अिस अेक माहमे जो कुछ अच्छेसे अच्छा देने योग्य था वह आपके शिक्षकोने आपको दिया है और आपने भी यथाशक्ति अुसे ग्रहण किया है। आप सब सच्चे हृदयसे और अुत्साहसे यहा दाखिल हुअे और आनन्दसे रहे है। यहा जो कुछ आपने किया या आपको करना पडा, वह सब आपने सन्तोषके साथ किया है। अिस अेक माहमे आपने यह देखा

सामुदायिक जीवनके लाभ

और सीखा होगा कि सन्तोषपूर्वक स्वीकार किया हुआ सामुदायिक जीवन मनुष्यकी अुन्नतिमें कितना सहायक होता है। अितने समयमें आपके ध्यानमें यह बात जरूर आअी होगी कि प्रेम, मित्रता, बन्धुभाव, आदर, विश्वास, शारीरिक कार्य करनेका अुत्साह, परस्पर सहायता करने, अेक-दूसरेको प्रेमपूर्वक सहन करने और अेक-दूसरेके दोषोंको बरदाश्त करनेकी वृत्ति, अेकता आदि सद्गुणोंका विकास सामुदायिक जीवनके बिना नहीं हो सकता। जीवनकी सच्ची व्यापकता और श्रेष्ठ प्रकारका आनन्द सामुदायिक जीवनमें कितनी आसानीसे मिल सकता है, यह आपने यहां रहकर जाना होगा। जो शारीरिक काम आपने जीवनमें कभी नहीं किये, अुन्हें आप यहां अुत्साह और अुमंगसे करते थे। घरमें जो काम करनेमें आपको शर्म लगती और हीनता मालूम होती थी, अैसे परिश्रमके काम करनेमें यहां आपको आनन्द आता था। अिस परसे आप सीखे होंगे कि परिश्रमके काम करनेमें लज्जित होना जीवनकी दृष्टिमें ठीक नहीं है। यह चीज आपके ध्यानमें आअी होगी कि मेहनतका कोअी भी काम करनेमें मनुष्यको किसी प्रकारकी हीनता मालूम होनेका सचमुच कोअी कारण नहीं है। जीवनकी दृष्टिसे अिस शिक्षणको मैं अधिक महत्त्व देता हूं। यहांके संचालकों और व्यवस्थापकोंने आप लोगोंके लिअे रहने और खाने-पीनेकी चाहे जितनी अच्छी व्यवस्था की हो, तो भी आपके रोजके जीवनकी सुख-सुविधाओंकी तुलनामें अुसमें कमी रह गअी होगी। परन्तु आपके प्रतिदिनके जीवनमें जो चीज आपको कभी सीखनेको नहीं मिल सकती, वह आपने यहां रहकर सीखी है। जो संस्कार आपको घर रहकर जीवनमें कभी नहीं मिल सकते थे, वे संस्कार यहां आसानीसे मिल सके हैं। यहां आपको अनेक विद्वान और चरित्रवान व्यक्तियोंके भाषण और अनुभव सुननेको मिले हैं और रोज किसी न किसी श्रेष्ठ व्यक्तिने आकर अपने अनुभव और ज्ञानका लाभ आपको प्रदान किया है। यहां अितने दिन तक कोअी न कोअी शारीरिक शिक्षण मिलनेके कारण आप लोगोंमें पहलेसे अधिक शक्ति भी आअी होगी। लाठी और पटेकी तालीमसे आपमें कुछ हिम्मत और आत्म-विश्वास भी आया होगा। यहांकी शिक्षा और रहन-सहनसे आपमें कुछ हद तक सहन-शक्ति भी बढी होगी। अिस दृष्टिसे विचार करने पर यह निश्चित रूपमें कहा जा सकता है कि आपने शक्ति, बुद्धि और सद्गुणोंके

विषयमें कुछ न कुछ नया सीखा और प्राप्त किया है। और यदि खोया होगा तो कुछ अंशमें अपना आलस्य, अपनी जड़ता, अपना अज्ञान और अपना अहंकार ही खोया होगा। ये दुर्गुण तो जीवनमें हम जिस हद तक खो सकें अुतना अच्छा ही है। मुझे आशा है कि यहां आपको अनेक प्रकारका जो बौद्धिक और शारीरिक शिक्षण मिला है अुसका जीवनमें आप लोग सदुपयोग करेंगे, यहां जो संस्कार आपको मिले हैं अुनमें वृद्धि करेंगे; और जो ज्ञान प्राप्त हुआ है अुसका अुपयोग करके अुसे बढ़ायेंगे। आपके अेक माहके निवासके लिअे यहांके संचालकों और व्यवस्थापकोंको कितना कष्ट अुठाना पडा होगा और कितना श्रम करना पड़ा होगा, अिसकी तो आपको कल्पना होगी ही। किसी निर्जन और जंगल जैसे स्थानमें सैंकडों मनुष्योंके रहने, खाने-पीने, नहाने आदिकी व्यवस्था करना आजके जमानेमें आसान बात नहीं है। परन्तु यह सारी व्यवस्था अुन लोगोंने अच्छी तरह और निःस्वार्थ भावसे की, यह आप जानते हैं। आपको भी अपने नित्यके रहन-सहनकी तुलनामें कुछ असुविधा भोगनी पडी होगी। फिर भी अुन लोगोंको और आपको जो कुछ कष्ट सहने पडे अुन्हें सार्थक बनाना आपके हाथमें है। अुन्हें आप सार्थक करेंगे तो अिस सारे परिश्रमका बदला अनेक कल्याणप्रद बातोंसे मिल जायगा।

परिश्रमका महत्त्व

आपने यहां थोडा लाठी और पटा चलाना सीखा होगा। अिस ज्ञानका प्रत्यक्ष जीवनमें आपके लिअे कितना अुपयोग होगा, अिस बारेमें मुझे शंका है। क्योंकि मेरे अपने और मेरे जैसे दूसरे लोगोंके अनुभवसे मैं आपसे कहता हूं कि तालीममें कितने ही वर्ष बितानेके बाद भी खेलको छोडकर और किसी समय हमारी लाठी किसीको लगनेका या दूसरे किसीकी लाठी हमें लगनेका कभी मौका नहीं आया। प्रत्यक्ष जीवनमें प्रायः अैसे मौके नहीं आते। अिसका कारण हमारा आजका जीवन ही है। शहरमें या गांवमें जब शान्ति होती है, तब हमारी अिस विद्याका सचमुच कोअी अुपयोग नहीं होता। और जब दगा-फिसाद होता है, अशान्ति फैलती है, तब हमारी ये लाठियां अशांतिका कारण बन सकती हैं। अिसलिअे लाठीके बारेमें सरकारकी तरफसे मनाहीका हुक्म निकाला जाता है। अतः शान्ति और अशांति दोनों समय हमारी विद्याका अेकसा अुपयोग होता है। फिर भी आपने स्वरक्षणकी जो विद्या प्राप्त की है,

अुससे आपमें अेक प्रकारका साहस और आत्म-विश्वास सदा जाग्रत रहेगा। यह साहस और यह आत्म-विश्वास जीवनकी दृष्टिसे बडे कीमती सद्गुण हैं। वे मौका आने पर आपके लिअे लाभदायी सिद्ध होंगे। हर मौके पर साधनहीन स्थितिमें भी निर्भय रहनेमें वे आपकी सहायता करेंगे। ये गुण यहा रहनेके कारण और यहाके शिक्षणके कारण जिस हद तक आपमें आये होंगे, अुस हद तक वे जीवनमें आपके सहायक होंगे ही। परन्तु जीवनमें सदा अुपयोगी सिद्ध होनेवाले अन्य गुणोंकी आप अुपेक्षा न करें, अिसलिअे मैं आग्रह और प्रेमके साथ आपसे कहना चाहता हू कि यहा रहकर यदि आप यह सीखे हो कि जीवनमें शारीरिक शक्ति और शारीरिक श्रमका कितना महत्त्व है, यदि आपके हृदय पर यह बात सचमुच जम गअी हो कि परिश्रम और सेवाका कोअी भी कार्य करनेमें शर्म नही है, अुलटे वह हमारा कर्तव्य है और अुसे करनेमें ही शक्तिका सच्चा सदुपयोग है, तथा वैसे काम यहा करनेमें आपने यदि सचमुच आनदका अनुभव किया हो, तो भविष्यमे आप अपने जीवनमें परिश्रम और सेवाको महत्त्वका स्थान दें। आपमें से किसीके यहा नौकर-चाकर हो तो आप अुन्हे केवल अिसलिअे हलके न समझें कि वे परिश्रमका काम करते हैं, बल्कि अुनके साथ सहानुभूति रखकर अपनी शक्तिका अैसा अुपयोग करें जिससे अुनके कामका बोझ कुछ कम हो, तो ही आपकी शक्तिका सदुपयोग हुआ कहा जायगा। आपके घरके परिश्रमके काम यदि आपकी मा, बहन या भाभीको करने पडते हो, तो अुनके कामोमें यथासभव सहायता करनेकी वृत्ति आप रखें। यदि आपमे शक्ति है तो अपने घरमे परिश्रम करनेवाले किसी भी व्यक्तिकी, नौकरकी भी सहायता करनेमें या अुसका भार हलका करनेमे आपको आनन्द आना चाहिये। सेवा करनेमे आप धन्यताका अनुभव करें। अिसीमें आपकी शक्तिकी सार्थकता है। ये बातें जीवनकी दृष्टिसे, समभावकी दृष्टिसे तथा हमारे राष्ट्र और हमारी अपनी अुन्नतिकी दृष्टिसे बडा महत्त्व रखती है। यदि शक्ति, परिश्रम और सेवाका यह न्याय आपने समझ लिया हो और अुसके अनुसार जीवनमे आप चलने लगे, तो कहा जायगा कि आप लोगोका यहा आना, पूरे माह कष्ट और मुसीबतें सहकर यहा रहना, आपके माता-पिताका आपके लिअे खर्च करना तथा अिस वर्गके सचालको, शिक्षको, यहा आये हुअे वक्ताओ और सारे व्यवस्थापक-मण्डल द्वारा कष्ट और श्रम अुठाना सफल हो गया। यहा रहकर शारीरिक शक्तिको

महत्त्व देना आप सीखे हो, तो अुसके साथ ही परिश्रमके लिअे आपके मनमें रही शर्म भी दूर हो जानी चाहिये। यहाके शिक्षणका यही रहस्य है। अिसीमे जीवनकी पवित्रता है, अिसीमे सच्ची मानवता है। यह मानवता सिद्ध करनेका शिक्षण लेनेकी दृष्टिसे ही अिस अेक माहके वर्गका महत्त्व है।

मेरी यही शुभ कामना है कि यहा आये हुअे आपके सब वर्ग-बन्धुओ तथा सचालको और शिक्षकोके बीच आजीवन प्रेम-सम्बन्ध बना रहे। आप सबमे अेकता और विश्वास बढे। अिसी प्रकारके शुभ हेतुसे बार बार आपका मिलन हो। परमात्माकी कृपासे आपमे सद्‌गुणोकी वृद्धि हो और अुनके द्वारा हमारे देशका कल्याण हो, अैसी शुभेच्छा व्यक्त करके मै अपना भाषण समाप्त करता हू।*

३०

दिव्य जीवन अर्थात् मानवीय जीवन

दिव्य जीवनका अर्थ है मानवीय सद्‌गुणोसे समृद्ध शुद्ध जीवन। दिव्य शब्दका अिससे अधिक अथवा कोअी काल्पनिक अर्थ करनेकी जरूरत नही है। अैसा जीवन प्राप्त करानेवाला धर्म मानवीय धर्म है। अिस धर्मका पालन किये विना हमे दिव्य जीवनकी आशा नही रखनी चाहिये या आशा रखना व्यर्थ है। अिस धर्मके अनुसार चलनेके लिअे हमे अपने विचारो और आचारोको शुद्ध बनानी चाहिये। मानव-जीवन केवल अपना और अपने परिवारका किसी न किसी तरह पालन-पोषण करके जीनेके लिअे अथवा किसी भी विषयके पीछे लगकर स्वच्छन्दता या स्वैरताका व्यवहार करके — धन, मान, कीर्ति, प्रतिष्ठा या अैसे दूसरे किसी मोहमे पडकर — पूरा करनेके लिअे नही है, बल्कि किसी अुच्च, अुदात्त और पवित्र ध्येयको सिद्ध करनेके लिअे है। अैसी श्रद्धा सर्वप्रथम हमारे मनमे होनी चाहिये। यदि हम जीवनके महत्त्वको न समझेगे, अुसकी सच्ची कीमत हमारे ध्यानमे नही आयेगी, तो हमारे विचार शुद्ध नही होगे। हम कहते है कि मनुष्य पशु-पक्षी और अन्य प्राणियोसे श्रेष्ठ है, हम

---

* मलाड (बम्बअी)के व्यायाम-वर्गकी पूर्णाहुतिके समय दिया हुआ अुपसहार-भाषण — १९४१।

यह भी मानते हैं कि हमारे जीवनका मूल्य अुनके जीवनसे अधिक है। परन्तु हम अपने जीवनमें कोअी अुच्च ध्येय सिद्ध करें, तो ही हमारा अैसा कहना और मानना ठीक कहा जायगा। अिसके लिअे हमें अपने पर अच्छे संस्कार डालने चाहिये। अच्छे संस्कारोंके बिना हममें सद्गुण नहीं आ सकेंगे। सद्गुण प्राप्त किये बिना मानवताकी प्राप्तिके लिअे हमारा स्वभाव जैसा होना चाहिये वैसा नहीं बन सकेगा। और वैसा स्वभाव बने बिना हम अुच्च ध्येयकी प्राप्तिकी आशा नहीं रख सकते।

विवेक, संयम और शुद्धिकी आवश्यकता

यह ध्येय प्राप्त करनेके लिअे हममें शुद्ध विवेकका होना अत्यन्त आवश्यक है। अिसके लिअे योग्य-अयोग्य, सार-असार, भला-बुरा और अुन्नति-अवनतिके बारेमें निर्णय करनेवाली शक्तिको सदा जाग्रत रखना चाहिये। हमें यह निर्णय करना चाहिये कि हमारा और दूसरोंका कल्याण किस बातमें है। हमें देश, काल, प्रसंग और परिस्थितिका ज्ञान होना चाहिये। अिस ज्ञान और शुद्ध विवेक-बुद्धि तथा निर्णय-शक्तिकी सहायतासे प्रत्येक कठिन अवसर पर हम यह जान सकेंगे कि हमारा कर्तव्य, हमारा धर्म क्या है, और यदि हममें दृढ़ता, निग्रह और संयम-शक्ति हो तो हम अनुचित कर्म और अधर्मसे बच सकते हैं। विवेकके साथ यदि हमारे भीतर संयम-शक्ति और दृढ़ता न हो, तो केवल विवेकसे हम अपना कल्याण नहीं साध सकते। वह हमें अकर्तव्य और अधर्मसे नहीं बचा सकता। अच्छे-बुरे संस्कारोंके अनुसार हमारे मनके प्रवाह चलते हैं और बहुत हद तक अुसीके अनुसार हम कर्म करते हैं। अुनमें से बुरे प्रवाहों — मनोवृत्तियों — और कर्मोंको रोकना संयमका काम है। मनुष्यकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियोंका जैसे-जैसे विकास होता जाय, वैसे-वैसे अुसकी संयम शक्ति भी बढ़नी जानी चाहिये। अिस प्रकार वह बढ़ती जाय, तो ही मनुष्य अुन शक्तियोंका सदुपयोग करके अपना कल्याण सिद्ध कर सकता है और अुच्च ध्येय प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार रेल-गाड़ीका वेग बढ़ानेकी कला सिद्ध हो जाय, परन्तु ठीक समय पर अुसे रोकनेकी कला या योजना हाथमें न हो तो अैसी गाड़ीसे अवश्य ही अनर्थ होगा, अुसी प्रकार अपनेमें बढ़ती हुअी भिन्न-भिन्न शक्तियोंको यदि मनुष्य अपने वशमें न रख सके तो निश्चित है कि वे शक्तियां अुसके और मानव-समाजके नाशका कारण बनेंगी। अतः हमारी बढ़ती हुअी

शक्तियोके साथ हममे विवेकयुक्त सयमकी वृद्धि होनी चाहिये। अिस संयमकी सहायतासे हम अपने मनको शुद्ध कर सकते है, अपने विकारों और दुष्ट वृत्तियोको रोक सकते है और अनुचित कर्मोंसे वच सकते है। संयमसे हमारा चित्त निर्मल होता जायगा और यह निर्मलता संयम-शक्तिको वढायेगी। अिस प्रकार अिन दोनो गुणोका विकास अेक-दूसरेको सहायतासे होता रहेगा। अुनके विकासके विना हमारा व्यवहार शुद्ध नही होगा। और व्यवहार शुद्ध हुअे बिना जीवन शुद्ध नही होगा। अत जीवन-शुद्धिके लिअे व्यवहार-शुद्धिकी जरूरत है। दिव्य जीवन प्राप्त करनेका, हमारा अुच्च ध्येय सिद्ध करनेका यही मार्ग है।

सद्‌गुण-समृद्ध पुरुषार्थी जीवन

जिस प्रकार अधर्मसे वचनेके लिअे सयम और चित्तशुद्धिकी जरूरत है, अुसी प्रकार धर्ममार्गसे अुन्नत बननेके लिअे सद्‌गुणोकी और सत्कर्मकी जरूरत है। पुरुषार्थके विना सद्‌गुण सिद्ध नही होते। और सद्‌गुणोकी सिद्धिके बिना सत्कर्म नही होते। हमारे मनमे सद्‌वृत्तिया और सद्‌भाव अुठते हो तो भी अुन्हे प्रत्यक्ष सत्कर्मका रूप देनेके लिअे हममे काफी प्रेरक बल होना चाहिये। अिस बलका अुपयोग करके निश्चयपूर्वक प्रयत्नशील रहे विना सत्कर्म पूरे नही होते। सत्कार्योंके बिना सद्‌गुणोका विकास भी नही हो सकता। सद्‌गुणोकी परीक्षा और कसौटी सत्कर्मोंसे ही होती है। सद्‌गुणो और सत्कर्मोंके बिना केवल चित्तशुद्धिसे जीवन पूर्ण नही होता। विवेक, सयम और सद्‌गुण-वर्धक पुरुषार्थ—अिन तीनोकी सहायतासे मानव-जीवन कृतार्थ हो सकता है। मनुष्यका पुरुषार्थ सद्‌गुणो द्वारा प्रकट होता है। अुससे सयम और मनकी शुद्धि तेजस्वी होकर प्रभावशाली बनती है। दूसरी बात यह है कि शुद्धिके अभावमे केवल पुरुषार्थसे मानव-जीवनके आसुरी वननेकी पूरी संभावना रहती है। अिससे मनुष्यकी अपनी और दूसरोकी अधोगति निश्चित बन जाती है। यह दिव्य जीवनकी प्राप्तिका मार्ग नही है। दया, परोपकार, अुदारता, मातृ-पितृ भाव, वन्धु-भगिनी भाव, सत्य, प्रामाणिकता, मैत्री आदि सद्‌गुण मानव-जातिके अभ्युदय और अुन्नतिके लिअे अत्यन्त आवश्यक है। वे ही मनुष्यकी सच्ची सम्पत्ति है। चित्तकी निर्मलताके बिना अिन सद्‌गुणोका पूर्ण विकास नही हो सकता। हमारी मलिनता हमारी सद्‌वृत्तियो और सद्‌गुणोके विकासमें बाधक होती है। अुससे मानवताकी गति कुंठित हो जाती है। अत शुद्धिका

आग्रह रखकर सद्गुणोंसे समृद्ध पुरुषार्थी और क्रियाशील जीवन सिद्ध करनेका हमारा प्रयत्न होना चाहिये। अिसीमें मानव-जीवनकी पूर्णता है, अिसीमें मानवताकी सिद्धि है।

हमारा हेतु जीवनमें कृत्रिम शोभा अुत्पन्न करनेका या किसी न किसी आडम्बरसे बड़प्पन प्राप्त करनेका नहीं होना चाहिये। बल्कि जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें, शरीर, मन और बुद्धि द्वारा होनेवाली प्रत्येक क्रियामें तथा वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, आन्तर-राष्ट्रीय सम्बन्धोंके हमारे विचारों, भावनाओं और कर्मोंमें शुद्धता अुत्पन्न हो, अैसा अुदात्त और पवित्र हमारा हेतु होना चाहिये। जीवनके प्रत्येक कर्मके पीछे अैसा परम अुच्च हेतु होना चाहिये, जिससे विवेक, संयम, सद्गुणों, पुरुषार्थ और कर्तृत्व-शक्तिकी हमारे भीतर वृद्धि होती रहे, हमारा जीवन पूरी तरह निर्मल, निर्दोष और व्यवस्थित बने तथा हम सब परमात्मा द्वारा मानव-जातिके लिअे निश्चित किये हुअे शुभ और मंगल ध्येयकी ओर निरन्तर बढ़ते रहें। सद्गुणोंकी और अुनके द्वारा मानवताकी पूर्णता सिद्ध करनेकी हमारी अुत्कट अभिलाषा होनी चाहिये। अिस हेतुकी दिशामें हमारा प्रयत्न आत्मशुद्धिसे आरंभ होना चाहिये। और मानवताकी सिद्धिमें अुस प्रयत्नकी परिसमाप्ति होनी चाहिये। अिस सिद्धिमें ही जीवनकी कृतार्थता और सार्थकता है।

हमारी वर्तमान स्थिति

अैसा जीवन ही सच्चा मानव-जीवन है। अिसीको दिव्य जीवन भी कहा जा सकता है। हम जब दिव्य जीवन या आध्यात्मिक जीवनके विषयमें बोलते या लिखते हैं, तब हमारे संस्कारोंके अनुसार हम अपने दार्शनिक, आध्यात्मिक और धार्मिक ग्रन्थोंका तथा हमारी प्राचीन संस्कृति, अीश्वरीय अवतारों, ऋषि-मुनियों, पूर्वजों आदिका बड़े गौरव और अभिमानके साथ वर्णन करते हैं। बेशक, ये सब अभिमान रखने और प्रशंसा करने जैसे हैं। परन्तु अुस गौरव और अभिमानके साथ हमें अपनी वर्तमान स्थितिका भी विचार करना चाहिये। साथ ही हमारे मनमें ये प्रश्न भी अुठने चाहिये बार बार भारत भूमिमें ही अीश्वरके अवतार क्यों होते रहे हैं? हमारे महान ग्रंथोंमें लिखा है कि पाप बढ़ जाने पर अीश्वर अवतार लेता है। तो भारतभूमिमें ही बार बार पापकी वृद्धि क्यों होती है? और अिस भूमि पर बार बार अीश्वरके अवतार होने

पर भी हमारी प्रजा आज तक अैसी अवनत दशामे क्यो है? ज्ञानसे भरे हुअे हमारे बहुमूल्य ग्रंथ, हमारी प्राचीन अुच्च संस्कृति, महापुरुषोकी अखंड परम्परा—यह सब विरासतमे मिलने पर भी आज हमारी अैसी घोर अवनति क्यो हो गअी है? मान ले कि आज हम अपने प्राचीन धर्मके अनुसार आचरण नही करते, परन्तु हजार वर्ष पूर्व या अुससे भी पहले तो हम अपने धर्मके अनुसार ही आचरण करते थे। परन्तु अैसा करते हुअे भी प्रत्येक विदेशी आक्रमणके समय अनेक अवसरो पर हमारी हार ही क्यो हुअी? अितिहास बताता है कि विदेशोसे आये हुअे केवल अपना पेट भरनेकी चिन्ता रखनेवाले या लुटेरे भी हिन्दुस्तानमे आकर सत्ताधीश और सम्राट् बन बैठे। हमने आपसकी लडाअीमे तो शूरवीरता दिखाअी है, परन्तु विदेशियोके सामने हम गुलाम और दीन-हीन माने जाते रहे है। अिसके क्या कारण है? हम मानते है कि दुनियाके दूसरे लोगोकी अपेक्षा हम अधिक धार्मिक और सुसंस्कृत है, और तत्त्वज्ञानका हमारे देशमे सबसे अधिक विकास हुआ है। ये सब बाते यदि सत्य मानी जाय, तो दूसरे देशोके लोगोसे हम व्यवहारमे ज्यादा अप्रामाणिक और स्वार्थी क्यो है? अपने देशबन्धुओको लूटकर, अुन्हे चूसकर, अुनका शोषण करके खुद सुखी होनेकी समाज-घातक वृत्ति हमारे लोगोमे प्राय. हर जगह क्यो दिखाअी देती है? पुनर्जन्म और परलोकमे श्रद्धा रखनेवाले, मोक्ष, अीश्वर आदिके विषयमे आस्तिक बुद्धि रखनेवाले हम लोग प्रत्यक्ष वर्तमान जीवनमे असत्यका आचरण क्यो करते है? धर्मका अभिमान रखनेवाले हम लोगोमे राष्ट्रप्रेम और बन्धुप्रेमका अितना अभाव क्यो दिखाअी देता है? राष्ट्रके विषयमे अपने कर्तव्यकी हमारी अुदासीनता राष्ट्र-द्रोहकी सीमा तक क्यों पहुंच जाती है? संसारके प्रति हमारा वैराग्य कर्तव्य-भ्रष्टता, बन्धुद्रोह, पंगुता, कायरता आदि दोषो और दुर्गुणोका रूप क्यो ले लेता है? हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक जीवनके सब ओरसे छिन्न-भिन्न होनेके क्या कारण है? शरीर और बुद्धिकी शक्ति तथा मानसिक पवित्रताके बारेमे हमारी अितनी हीन दशा क्यो है? आज अिस भारतमे लाखो नही करोडो लोग अैसे है, जिन्हे पेटभर खाना नही मिलता, पहननेको पूरे कपडे नही मिलते, रहनेको घर तो क्या झोपडी भी नही मिलती। करोडो बालक दूधके बिना रहकर जैसे-तैसे जीते है और बडे होते है। और सबसे बडे दु खकी बात तो यह है कि अैसे हजारो-

लाखों मनुष्योंको काम न मिलनेसे भूखों मरना पडता है, जो मेहनत-मजदूरी करनेके लिअे तैयार हैं। मनुष्यके आकारमें केवल प्राण अुनमें जैसे-तैसे टिके रहते हैं। यह स्थिति देशमें दिनोंदिन बढती जा रही है। यह स्थिति अत्यन्त दुःखद और चिन्ताजनक है। अैसी स्थितिमें भी बन्धुद्रोही और देशद्रोही लोग या कोअी भी पाप करनेमें पीछे न हटनेवाले लखपति करोड-पति बनते हैं। कालाबाजार करनेवाले, रिश्वत लेने और देनेवाले, मालमें मिलावट करनेवाले और अुचित कर अदा करनेमें बेअीमानी करनेवाले लोग धनके साथ मान-प्रतिष्ठा भी प्राप्त करते हैं। अिन सब बातोंके कारण और अिन प्रश्नोंके अुत्तर हमें खोज निकालने चाहिये।

सहृदयता और समभाव

हमें यह बात याद रखनी चाहिये कि हमारी अपनी और आसपासकी अिस दुःख और अुद्वेगजनक स्थितिमें से हमें दिव्य जीवन प्राप्त करना है। दिव्य जीवनकी व्यक्तिगत आशामें अिस वास्तविक और सार्वजनिक स्थितिको भूलनेसे हमारा काम नहीं चलेगा। अूपर बताअी गअी स्थितिमें जिन्हें अति-शयोक्तिकी शका अुठती हो वे स्वय देशकी स्थितिकी जाच करें और यदि अनुभवसे अुन्हें अिसकी सत्यतामें विश्वास हो जाय, तो अिस प्रश्न पर गहराअीमें विचार करें कि अैसी स्थितिमें से हम दिव्य जीवन कैसे प्राप्त कर सकते हैं। यदि कोअी यह मानते हों कि अिस स्थितिको यथावत् कायम रखकर हम दिव्य जीवन प्राप्त कर सकते हैं, तो मजबूर होकर कहना पडेगा कि यह अुनका निरा भ्रम है। जिनकी अपनेपनकी कल्पना अपने शरीर तक ही सीमित है, हम अर्थात् हमारा शरीर और अुसमें बसनेवाली आत्मा — अितनी ही जिनकी आत्मा-सम्बन्धी भावना है, अुनकी बात जाने दें तो बाकी सब लोगोंको, जिनके जिनके हृदयमें दूसरोंके लिअे सहृदयता है अुन सबको, हमारी आजकी अवनत और हीन स्थितिके लिअे दुःख हुअे बिना नहीं रहेगा। जिसका आत्मभाव विशाल बन गया है, जिसमें सबके साथ समरस होने जितनी सहृदयता है, वह अपने अकेलेके सुख-दुःखमें कभी अपनेको सुखी या दुःखी नहीं मानता। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का महान सिद्धान्त यदि मानवताकी सच्ची श्रेष्ठताका दर्शक हो, तो जिसे यह श्रेष्ठता प्राप्त करनेकी आकांक्षा हो, अुसे सबके लिअे सहृदयता रखनी ही होगी। और सहृदयताका गुण जिसके हृदयका स्वाभाविक धर्म बन गया होगा, अुसे अिस महान् सिद्धान्तको केवल

माननेसे ही शान्ति—संतोष नही होगा; वह अिसे आचरणमें भी अुतारेगा। सहृदयता और समभाव दैवी या सर्वोच्च मानवीय भाव हैं। अुन्हींमें से दिव्य या शुद्ध जीवनका मार्ग प्राप्त होता है। ये गुण प्राप्त किये विना दिव्य जीवनकी प्राप्ति सभव नही लगती। आत्माकी विशालताका अनुभव केवल अेकाध अुच्च सिद्धान्तके माननेसे नही होता। जिनका आत्मत्व केवल अपने शरीर तक ही सीमित है, वे अिस मार्गको नही समझ सकेंगे और समझ भी लेंगे तो अुसके अनुसार आचरण नही कर सकेंगे। दिव्य जीवनकी आकांक्षा रखनेवालोको हमारी आजकी स्थिति पहचानना चाहिये। हमारे पतनके, हमारी अवनतिके कारण खोजने चाहिये। अपनी विशालताकी यथार्थ कल्पना अुनके ध्यानमे आनी चाहिये और ये सब बाते जानकर हमारी सार्वत्रिक अवनतिमे से हमारे अुद्धारका मार्ग अुन्हे खोज निकालना चाहिये।

केवल जीव-दशामें से विशाल आत्मतत्त्वकी ओर

परमात्माने अन्य प्राणियोकी अपेक्षा मनुष्यको अधिक बुद्धि प्रदान की है। अुसे बढानेके लिअे जिज्ञासा-वृत्ति भी दी है। अुससे मनुष्यका ज्ञान बढता आया है और आज भी बढ रहा है। अिस ज्ञानकी सहायतासे मनुष्य अपने और दूसरोके सुख-दु खके कारण खोज निकालता है। मनुष्यके मुख्य गुण — दया, सहानुभूति और सहृदयता — जिसमे होते हैं, वह प्राप्त ज्ञानका सदुपयोग करके अपनेको और दूसरोको दु खसे बचाता है और सुखकी वृद्धि करनेका प्रयत्न करता है। ज्ञान, सद्‌भाव और पुरुषार्थकी बढनेवाली मात्रा परसे मनुष्यकी मानवताकी परीक्षा होती है। दूसरोके दु ख हमे कितने असह्य लगते हैं और अुन्हे दूर करनेके लिअे हम क्या प्रयत्न करते है तथा दूसरोके सुखसे हमे कितना सन्तोष होता है, अिस परसे हमारी मानवताकी मात्रा निश्चित होती है। आज हम अपने शरीरको या अुसे व्याप्त करके रहनेवाले तत्त्वको ही आत्मा समझे और अितने सकुचित आत्मत्वको अथवा अपनेपनको ही अपना समझें, तो सिद्ध होगा कि हम अपनी जीव-दशासे थोडे भी अूचे नही अुठे हैं। अपनेपनकी सकुचित मर्यादाको छोडकर और अुसके परे जाकर आज मानव-जाति कितनी ही आगे बढ गअी है। अुसने अपनी व्यापकता बढा ली है। अुसी व्यापकताको किसीने 'हम सब अेक ही अीश्वरके बालक है' अिन अुदात्त शब्दोसे, किसीने 'हम सब भाअी-भाअी हैं' अिस वचन द्वारा, तो किसीने 'घट घटमे अेक ही तत्त्व है'

जिस वाक्यसे व्यक्त किया है। और जिन्हें अिससे भी अधिक दिव्य दृष्टि प्राप्त हुअी, अुन्हें 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' और 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेकी सीमा तक अपनी व्यापकताका दर्शन हुआ है। ये सारे महावाक्य सच्चे हों तो अुस व्यापक सीमा तक हमें अपने आत्मतत्त्वका विस्तार मानकर अुसका विकास करना चाहिये। तभी जीव-दशासे हमारा अुद्धार होगा और हम मनुष्य कहलानेके पात्र बनेंगे। यह पात्रता सिद्ध करनेके लिअे समभाव बढानेवाले प्रत्येक सद्-गुणकी हमें आवश्यकता है। आत्माको भी हम अपने शरीर जितनी ही संकुचित मानें और यह मानते रहें कि अुसीको सुख, अैश्वर्य, मान-प्रतिष्ठा या मोक्ष मिला कि हम कृतार्थ हो गये, तो अुसका यह अर्थ होगा कि अपने महापुरुषोंके महान वचनों पर हमारी श्रद्धा नहीं है। और अैसी अश्रद्धाकी स्थितिमें हम दिव्य जीवनकी आशा नहीं कर सकते। अिसलिअे सबके प्रति हमारा आत्मवत् भाव होना चाहिये। विशाल आत्मभावके बिना, सबके प्रति सद्भाव रखे बिना मानवताकी पूर्ण सिद्धि नहीं हो सकती।

हमारा अुद्धार हमारे ही हाथमें

यह पूर्णता सिद्ध करना हमारे जीवनका अुद्देश्य हो, तो मानवताके विकासके मार्ग पर हमें चलते रहना चाहिये अर्थात् मानव धर्मके अनुसार आचरण करना चाहिये। हमारी अुन्नति, अुद्धार, गति, मुक्ति, सार्थकता, दिव्य जीवन, शुद्ध जीवन जो भी कहें सब मानवीय धर्मसे ही प्राप्त किया जा सकता है। अुसके लिअे हमें अपनी शुद्धि, सद्गुण और पुरुषार्थ बढाना चाहिये। मानवीय धर्मके अनुसार हमारा आचरण हो तो फिर अपने अुद्धारके लिअे हमें परमेश्वरके अवतारकी राह देखते रहनेकी जरूरत नहीं होगी। अिससे हममें अैसी श्रद्धा निर्माण होगी कि हमारा अुद्धार हमारे हाथमें है। अिस धर्मके अनुसार आचरण न करके यदि हम स्वच्छन्दता और स्वार्थ-पूर्ण व्यवहार करेंगे, तो भगवान् भी हमारा कल्याण नहीं कर सकेंगे। श्रीकृष्ण जैसे अनेक प्रकारसे समर्थ महापुरुष भी — जिन्हें हम अीश्वरका अवतार मानते हैं — जब साक्षात् अिस पृथ्वी पर विद्यमान थे, तब भी धर्मराज युधिष्ठिरको द्यूतके अनर्थसे बचा नहीं सके। बन्धुद्रोह और आपसके कलहके कारण १८ अक्षौहिणीका नाश अुनके देखते ही देखते हुआ था। अुनकी नजरके सामने ही छप्पन करोड यादवोंने शराबके नशेमें लडकर अेक-दूसरेका संहार किया था। अिन सब बातोंका समाजको कितना भयंकर परिणाम भोगना पडा यह हम

सब जानते है। साराश यह है कि यदि हम दुर्गुणी और व्यसनासक्त हो, अेक-दूसरेका गला काटकर स्वार्थ साधनेवाले हो, तो परमेश्वरके अवतार कहे जाने योग्य पुरुष मानवके रूपमे हमारे बीच रहकर और हमारी चाहे जैसी सेवा करनेके लिअे तत्पर रहकर भी हमे अनर्थसे बचाकर हमारा अुद्धार नही कर सकते। यह अितिहास परसे सिद्ध होता है। तब फिर आज हम अधर्मका आचरण करके केवल अीश्वरका नाम-स्मरण करते रहे तो अुससे हमारा अुद्धार कैसे हो सकता है? अिसके बदले यदि हम धर्मका आचरण करते रहे और अीश्वर पर केवल निष्ठा रखे, तो वह निष्ठा भी हमे महान सकटोसे बचा सकेगी, हमारा अुद्धार कर सकेगी। धर्म और निष्ठामे हर प्रकारकी शक्ति भरी है। धर्म और निष्ठा दो भिन्न वस्तुअे नही है, क्योकि जहा धर्म है वहा निष्ठा होगी ही और जहा निष्ठा है वहा धर्माचरण होता ही रहेगा, अैसा नियम है। सच्ची निष्ठा अीश्वरका नाम लेनेमे, अुसका वर्णन करनेमे, अुसके स्तुति-स्तोत्र गानेमे या अुसके नाम पर कोअी कर्मकाण्ड करते रहनेमे नही है, परन्तु महापुरुषो द्वारा बताये हुअे धर्मका आचरण करनेमे है। अुस धर्मका अर्थ है मानवीय धर्म।

अुस धर्मको हमे समझना चाहिये। अुसका चिन्तन और मनन करके अुसके आचरणके लिअे आवश्यक सद्‌गुण हमे प्राप्त करने चाहिये। मानव-जीवन अेकाकी नही है। हमे समझना चाहिये कि वह हम सबके सहकारसे, अेक-दूसरेकी सहायतासे चल रहा है। अुसे हमे अिस ढगसे चलाना सीखना चाहिये कि वह हम सबके लिअे सुखरूप और कल्याणप्रद हो। हमे अेक-दूसरेमे विश्वास और मेलजोल रखनेके लिअे आवश्यक गुण प्राप्त करने चाहिये। अेक ही विश्वशक्तिसे — परम शक्तिसे — अुत्पन्न होकर हम सब आजकी स्थितिमे कैसे पहुंच गये, यह जाननेका हमे प्रयत्न करना चाहिये। हमे यह भी जानना चाहिये कि हम सब पुनः अुसी परम शक्तिमे अिस प्रकार कैसे विलीन हो सकते है कि कोअी किसीको भिन्न रूपमे पहचान न सके। हमे यह भी समझना चाहिये कि अुत्पत्ति, स्थिति और लयके विश्व-क्रममे, अिस अखण्ड व्यापारमे, देहके निमित्तसे प्रकट दशाको प्राप्त करनेवाला 'अहं' परम शक्तिकी तुलनामे कितना अल्प है। अैसे हम जान सके तो ही हम निष्काम और निरहंकारभावसे धर्माचरण करते रह सकते है। परमात्माके

विश्व-व्यापारके साथ समरसता

चिन्तन और मननसे हम अुनको विश्व-व्यापारके साथ जैसे-जैसे समग्र होते जायगे, वैसे-वैसे हम यह समझते जायगे कि अिस विश्वमें, अिस जीवनमें हमारा अपना अलग कुछ नहीं है। देह, बुद्धि, मन, अिन्द्रिया तथा अुनके धर्म, शक्तियां, गुण, भाव, कर्तृत्व — अितना ही नहीं, चेतन, आत्मा सब अुसीके प्रकट रूप हैं। ये सब अुसीमें से निर्माण होकर अपनी आजकी स्थितिमें पहुचे हैं। अिन सब दर्शनों और अिन्हींमें से अुत्पन्न होनेवाले अन्य विविध दर्शनों तथा विद्या, ज्ञान, धन, बल, सत्ता, सामर्थ्य, सद्गुण आदिमें से किसी भी विशिष्टता पर हमारा अधिकार नहीं है। अिसलिअे अिनके बारेमें व्यक्तिगत अहकार न रखते हुअे, केवल अपने सुखके लिअे अुनका लोभ न रखते हुअे, अुनसे जीवनोपयोगी जो भी कुछ प्राप्त हो वह सब सबके हितके लिअे सदा अर्पण करते रहना ही सच्चा मानव-धर्म है। वही सच्चा अीश्वर-समर्पण है। अिस समर्पणमें ही भक्तिकी परिसीमा, ज्ञानका अतिम साध्य, योगकी सिद्धि आदि सब कुछ आ जाता है। जीवनभर निष्काम और निरहकारभावसे कर्तव्य करते रहनेके लिअे हमें अिस धर्मकी जरूरत है।

अिस समर्पणमें और सहृदयतासे सबके साथ समभाव रखकर आत्मत्वकी विशालता साधनेमें ही मानवताकी पूर्णता है। यह पूर्णता ही दिव्य जीवन है। और दिव्य जीवन ही जीवन-शुद्धि या जीवन-सिद्धि है। यह शुद्धि या सिद्धि प्राप्त करनेके लिअे ही हम सबका जन्म हुआ है। यह सिद्धि प्राप्त करानेवाला धर्म मानव-धर्म है। अुस धर्ममें सबका कल्याण करनेकी शक्ति निहित है। परमात्माकी कृपासे अुस मानव-धर्मके अनुसार आचरण करनेकी सन्मति सबमें पैदा हो, यही मेरी प्रार्थना है। *

---

* सूरतमें जून, १९५३ में दिये गये अेक भाषण परसे।

हमारी कुछ हिन्दी पुस्तकें

अहिंसक समाजवादकी ओर	२—०—०
आरोग्यकी कुंजी	०—७—०
खादी	२—०—०
गांधीजीकी संक्षिप्त आत्मकथा	०-१२-०
गोसेवा	१—८—०
दिल्ली-डायरी	३—०—०
नयी तालीमकी ओर	१—०—०
बापूके पत्र सरदार वल्लभभाओीके नाम	३—८—०
बापूके पत्र मीराके नाम	४—०—०
बुनियादी शिक्षा	१—८—०
रामनाम	०-१०-०
विद्यार्थियोंसे	२—०—०
शिक्षाकी समस्या	३—०—०
सच्ची शिक्षा	२—०—०
सत्य ही ओश्वर है	८० नये पैसे
सर्वोदय	२—८—०
हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण	१—८—०
भूदान-यज्ञ	१—४—०
सरदार वल्लभभाओी — १	६—०—०
सरदार वल्लभभाओी — २	५—०—०
अुस पारके पड़ोसी	३—८—०
स्मरण-यात्रा	३—८—०
हिमालयकी यात्रा	२—०—०
गांधी और साम्यवाद	१—४—०
जड़मूलसे क्रान्ति	१—८—०
शिक्षाका विकास	१—४—०
शिक्षामें विवेक	१—८—०
बापूकी छायामें	२—८—०
बा और बापूकी शीतल छायामें	२—८—०

डाकखर्च अलग

नवजीवन कार्यालय
अहमदाबाद — १४